प्रधानमंत्री की कुर्सी की दिशा में एक किसान के बढ़ते कदम

मोरारजी देसाई के त्याग-पत्र देते ही नये गठजोड़ की दिशा में जोरदार तैयारियां होनी प्रारम्भ हो गई थीं। कम्युनिस्ट पार्टी (मा.) तथा अन्य दलों के कुछ नेताओं ने चौधरी साहब से जनता (एस) का नेतृत्व करने का अनुरोध किया तो उनकी प्रतिक्रिया थी, 'मैं नहीं जानता कि आप मुझसे क्या कराना चाहते हैं।'[1] लेकिन साथियों के आग्रह पर उनको सहमति प्रदान करनी ही पड़ी।

राष्ट्रपति महोदय ने 18 जुलाई 1979 के दिन कांग्रेस (एस) के नेता श्री वाई. बी. चह्वाण को सरकार बनाने के लिए निमंत्रण दिया। चार दिन बाद, 22 जुलाई 1979 के दिन श्री चह्वाण साहब ने सरकार बनाने में असमर्थता ज्ञापित कर दी। मोरारजी देसाई अब भी अपने चालें चल रहे थे। आपने जगजीवन राम को आश्वासन दिया कि यदि वह सरकार न बना सके तो उनके पक्ष में जनता-पार्टी के नेता का पद त्याग देंगे।[2] 23 जुलाई को यह स्थिति थी कि कोई बहुमत जुटाने की स्थिति में न था। तब श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक चाल चली। उन्होंने बिना शर्त चौधरी साहब को समर्थन देने का आश्वासन दे दिया। निश्चय ही, इस चाल के मूल में उनकी कांग्रेस की जबर्दस्त कूटनीति छिपी हुई थी। उन्होंने पहले आमरण अनशन करके उनके विरोध में जनमत उत्पन्न करने वाले मोरारजी को पटक देने का इरादा कर लिया था और फिर उत्तर-पश्चिमी भारत से उनका सफाया करने वाले चौधरी साहब को पाठ पढ़ाने का। यद्यपि चौधरी साहब उत्तर-भारत में श्रीमती गांधी की अवसरवादी एवं स्वार्थपरक नीति के रूबरू हो चुके थे, फिर भी साथियों के आग्रह और अवसर की गम्भीरता के कारण आप विष का प्याला पीने के लिए तैयार हो गये। लोक-कल्याण के लिए विषपान करना उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी और इसी की पूर्णता के लिए उन्होंने श्रीमती गांधी के आश्वासन पर सहमति व्यक्त कर दी।

श्रीमती गांधी द्वारा चौधरी साहब के पक्ष में समर्थन देने की सूचना समाचार पत्रों में प्रकाशित कराने के बाद 25 जुलाई 1979 के दिन दोनों नेताओं ने 280 संसद-सदस्यों की सूची राष्ट्रपित को भेज दी। चौधरी साहब की सूची में जनतादल (एस) के 92, समाजवादी पार्टी के 15, कांग्रेस के 75, इंका के 73, माकपा के 7, मुस्लिम लीग के 2, आर. एस. पी. का 1, अकाली दल के 9 और पी. डब्ल्यू. पी. के 7 सदस्य थे। दूसरी लिस्ट में 15 सांसद कांग्रेस के थे। इनसे विरोध-पत्र प्राप्त करके, श्री देवराज अर्स ने राष्ट्रपति को भेज दिये। फलतः जनता पार्टी का दावा विफल हो गया, क्योंकि 539 सदस्यों की लोकसभा में चौधरी साहब के समर्थन में 262 सदस्य थे और मोरारजी देसाई के समर्थन में 236।[3] इतने पर भी चौधरी साहब को लोकसभा में पूर्ण बहुमत नहीं मिल पाया। अस्तु राष्ट्रपति महोदय ने चौधरी साहब को लिखे अपने पत्र में अगस्त के तीसरे सप्ताह तक विश्वास-मत प्राप्त करने का परामर्श दिया। चौधरी साहब को विश्वास था कि वह राष्ट्रपति द्वारा इंगित लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा कर सकेंगे। उन्होंने अपनी कार्य-सूची में मुख्यतः बेकारी तथा गरीबी का संभावित स्तर तक निवारण, गरीब तथा अमीर के बीच के अन्तर को कम करना और वर्गहीन स्वस्थ समाज-रचना को प्राथमिकता के साथ रखा।

चौधरी चरणसिंह द्वारा प्रधानमंत्री की शपथ लेने पर, राजनीतिक क्षेत्रों में दो प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। मोरारजी देसाई का कहना था कि 'राजनीतिक दल-बदल की प्रक्रिया को आज पवित्र छीना-झपटी का स्वरूप मिल गया है।'[4] जनता पार्टी के अध्यक्ष चन्द्रशेखर का कथन था—'श्री रेड्डी (राष्ट्रपति जी) के निर्णय का तात्पर्य है कि दल-बदल जिसकी भर्त्सना राजनीतिक क्षेत्र में प्रायः होती है, को पुरस्कार देना है।'[5] दूसरी ओर श्रीमती गांधी की प्रतिक्रिया थी—'मुझे प्रसन्नता है कि जनता पार्टी समाप्त हो गई।'[6] क्या ये तीनों मत वैयक्तिक तथा दलीय स्वार्थों से प्रभावित नहीं थे इसका निर्णय समझदार पाठक खुद कर लेंगे।

शपथ लेने के बाद चौधरी साहब राष्ट्रपति-भवन से सीधे श्री चह्राण के निवास पर गये और कांग्रेस-पार्टी को उनकी सरकार में शामिल होने का निमंत्रण दिया। चौधरी साहब ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि इंदिरा-कांग्रेस के उनके मंत्रिमंडल में शामिल होने का कोई प्रश्न नहीं है। आपने अपने और श्रीमती गांधी के बीच किसी वार्तालाप से भी इंकार कर दिया।[7]

सबसे अधिक दुःख की बात यह है कि समस्त भारत से भ्रष्टाचार एवं अनुशासनहीनता, गरीबी एवं बेगारी, अमीरी एवं गरीबी के अंतर, मंत्रियों की

शान-शौकत एवं विदेश यात्राओं पर होने वाले अपव्यय, ग्रामीण-क्षेत्रों में शिक्षा एवं स्वास्थ्य विषयक साधनों के अभाव, नेताओं के कथन एवं कर्म के विरोधाभास के निवारण के लिए कटिबद्ध तथा गांधीवादी अर्थव्यवस्था की नीति के कट्टर समर्थक, किसान-नेता चौधरी चरण सिंह जैसे व्यक्ति को, प्रधानमंत्री के स्थान तक पहुंचने, जहां से वह देश की आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक स्थिति की कायापलट कर सकते थे, को रोकने के लिए मोरारजी देसाई, चन्द्रशेखर और जगजीवनराम जैसे लोगों ने भरसक व्यवधान प्रस्तुत किये थे। 'लिंक' पत्रिका के जुलाई 29, 1979 के अंक के आधार पर आर. के. हुड्डा की मान्यता है–

(ए. आई. ए. डी. एम. के.) पार्टी द्वारा जनता पार्टी को समर्थन देने की स्वीकृति मिल जाने के पश्चात् श्री देसाई, जगजीवनराम और चन्द्रशेखर ने अकाली तथा कुछ अड़ियल किस्म के कांग्रेस के लोकसभा सदस्यों को अपनी ओर खींचने के कुछ निराशाजनक प्रयास किये थे।[8]

यदि इन महानुभावों ने वैयक्तिक स्वार्थों तथा दलीय संकीर्णता से ऊपर उठकर चौधरी साहब जैसे सिद्धांत-प्रिय, कर्मठ और ईमानदार राजनीतिक कार्यकर्ता को जनता के हित में समर्थन एवं सहयोग दिया होता तो आज देश का भविष्य बहुत उज्ज्वल होता। वह अपने विकास के लिए न अन्य देशों की सहायता पर निर्भर करता, न आर्थिक दासता की जंजीरों में बंधने की ओर जाता। न उसको कश्मीर के छद्म युद्ध पर सैनिक और सम्पत्ति लगानी पड़ती, न देश में भ्रष्टाचार का दानव समस्त मानवीय मूल्यों का भक्षण कर पाता, न ऋण-चुकाने में असमर्थ किसानों को आत्महत्याएं करनी पड़ती, न अपहरण एवं आतंक की भयानक छाया में निर्दोष भारतीय जीवन जीता, न बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षी योजनाओं की रकम बेईमानों के घरों में चली जाती और न उन योजनाओं की अपूर्णता के फलस्वरूप, भारत का आम आदमी योजना में निर्धारित लाभों से वंचित रहता। श्रीमती इंदिरा गांधी को भी, इस परिधि से बाहर नहीं किया जा सकता। उन्होंने पहले मोरारजी देसाई को चित्त करने के लिए चौधरी साहब को सहारा दिया और फिर अपने समर्थन की डोर खींच कर चौधरी साहब को पटक दिया। इसमें कोई संदेह नही कि वह राजनीतिक चालों के दंगल में, चौधरी साहब को हरा कर जीत गई थी, वह अपने तथा अपने पुत्र के लिए, प्रधानमंत्री की कुर्सी तक पहुंचने का रास्ता साफ कर गई थी, पर वह जीत कर भी हार गई थी और चौधरी साहब हार कर भी जीत गये थे। देश की समृद्धि के इतिहास का निष्पक्ष अध्येता इन तथ्यों पर जब विचार करेगा, तब वह अपने पाठकों के सामने यही

विचार रख सकेगा कि यदि चौधरी चरण सिंह जैसा ईमानदार, जनता के हितों के साथ बड़ी गहराई के साथ जुड़ा और राजनीति एवं सत्ता को देश के उत्कर्ष का माध्यम माने वाला कर्मठ व्यक्ति, देश की सत्ता के शीर्ष स्थान पर बैठा होता, तो हमारा देश और उसकी परिश्रमी जनता गरीब, बेरोजगार एवं औरों की ओर देखने वाली बनी न रहती। न वह आतंक, अराजकता और भ्रष्टाचार के साये में जीवित रहती और न अपने आर्थिक-उत्कर्ष के लिए दुनिया के अन्य देशों का मुंह ताकती और न देश का प्रत्येक व्यक्ति, विदेशी ऋण के भार में जीवनयापन करता।

लेकिन जिस तरह रावी के तट पर बसे वैदिक आर्यों को, अपनी सत्ता के गर्व में डूबे राजा 'सुदास' एवं दक्षिणा के लोभ में अंधे बने वशिष्ठ के कारण अपना देश छोड़कर, मध्य-एशिया एवं योरोप के देशों की ओर जाने पर विवश होना पड़ा था, उसी प्रकार नेहरू परिवार के प्रतिक्रियावादी शासन को देश पर लादे रखने के मोह में डूबे चंद चाटुकार राजनीतिक नेताओं तथा स्वयं श्रीमती गांधी की कूटनीति से भरी चालों, उद्योगपतियों के हितों की रक्षा करने में संलग्न मोरारजी देसाई की संकीर्ण नीतियों और अपने वैयक्तिक हितों की सीमा से आगे न देख पाने वाले कुछ समाजवादी नेताओं एवं दलित-उत्थान के परचम तले राजनीति करने वाले कुछ लोगों के संकीर्ण स्वार्थों के कारण, देश की जनता को, आज तक गरीबी में जीने पर विवश होना पड़ा है। यह एक ऐसा सत्य है, जिसको याद करके प्रत्येक देशभक्त का मन घृणा और क्रोध से भर उठता है।

इस समस्त घटनाक्रम से एक तथ्य यह भी उभर कर आता है कि देश के अन्य वर्ग, जाति और समुदायों की अपेक्षा किसान देश का सच्चा हितैषी है, वह देश की शक्ति और समृद्धि के लिए, सच्चे अर्थ में औरों की अपेक्षा अधिक त्याग करता है। इतिहास इस बात का गवाह है कि देश के अन्य वर्ग देश-रक्षा का केवल नाटक करते आये हैं और किसानों ने प्रायः प्रत्येक अवसर पर प्राणों की बलि देकर अप्रतिम देशभक्ति का परिचय दिया है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण है, मालव या मल्ली गोत्र के जाट किसान युवक चन्द्रगुप्त का जिसने मद्र तथा कठ जनपदों के ध्वंस, आंभीक की गद्दारी, सिंकदर के सामने पौरव के समर्पण के पश्चात, सिकन्दर का आगे बढ़ना क्षुद्रक तथा मालव-किसानों की दीवाल खड़ी करके रोक दिया था। दूसरा प्रमाण है, चन्द्रगुप्त के वंशज समुद्रगुप्त का, जिसने भारतीय इतिहास को स्वर्ण-युग प्रदान किया था, तीसरा प्रमाण है खैबर-दर्रे के कींकन क्षेत्र में बसे जाट-किसानों का, जिन्होंने निरंतर दो सौ वर्षों

तक, भारत पर अरबों के होने वाले आक्रमणों को रोका था[9], चौथा प्रमाण है भारत के खोखर जाट-किसानों के नेता रायसाल का, जिसने राजस्थान, इन्द्रप्रस्थ और कन्नौज के सामंतों को कुचल देने वाले शाहबुद्दीन गौरी को सन् 1206 में घेर कर मार डाला था[10] और जिनको पन्द्रहवीं शती के अंत तक, दिल्ली का सुलतान अपने अधीन न कर सके थे।[11] पांचवां प्रमाण है पंजाब के उन सिख गुरुओं का, जो मूलतः पंजाब के जाट-किसानों की संतानें थे और जिन्होंने उस समय मुगल-शासन को चुनौती देकर भारतीय संस्कृति की रक्षा की थी, जब कोई राजा या धर्म-गुरु उसके विरोध का साहस नहीं कर पा रहा था, छठा उदाहरण है सोरम की सर्वखाप पंचायत का, जिसने सन् 1197 में सुल्तान कुतुबुद्दीन द्वारा पंचायत पर लगाये गये प्रतिबंध तथा जजिया का विरोध किया था[12], जिसने 1248 में सुल्तान नसीरुद्दीन के शासन को चुनौती देते हुए प्रस्ताव पास किये थे[13] 'किसी व्यक्ति को शाही-सेवा के लिए बाध्य न किया जाए', 'हानिकारक करों को हटा देना चाहिए', 'किसी भी स्त्री को उसकी जाति की अनुमति के बिना न ले जाया जाए' और किसी भी शाही-प्रशासक को जनता को सताने तथा हानिकारक कर लगाने की अनुमति नहीं होनी चाहिए' और अन्ततः जिसने सन् 1297 में प्रस्ताव पास किये थे[14]–'बढ़ा हुआ भू-राजस्व कोई नहीं चुकायेगा', 'बारातों पर लगे प्रतिबंध का पालन नहीं किया जायेगा', 'जजिया नहीं चुकाया जाना चाहिए', 'पंचायतों को अपनी पूर्णतः स्वतंत्रता कायम रखनी चाहिए। यदि दिल्ली का बादशाह इन मांगों को पूरा नहीं करता तो पंचायत को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए दिल्ली-दरबार के विरुद्ध युद्ध छेड़ने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए।' ये प्रस्ताव अलाउद्दीन खिलजी के शासन के विरुद्ध किये गये थे, जिसके सामने राजस्थान का प्रत्येक राजा घुटने टेक चुका था और देश का कोई शंकराचार्य तथा पुजारी अपने धर्म की रक्षा के लिए एक शब्द भी नहीं बोल रहा था। ये प्रस्ताव खिलजी के प्रमुख मंत्री मलिक काफूर द्वारा स्वीकृत किये गये थे।

सातवां उदाहरण मथुरा-आगरा के उन किसानों का है, जिन्होंने अकबर बादशाह के नील की खेती के ईजारेदारी वाले आदेश को तोड़ते हुए, अपने खेतों से नील के पौधे उखाड़ कर फेंक दिये थे।[15] इसके अतिरिक्त कई वे किसान-आन्दोलन हैं, जिन्होंने अंग्रेस-सरकार की नींद हराम कर दी थी और राष्ट्रीय आन्दोलन को देशव्यापी रूप दिया था। इनमें सबसे पहले 1857 की उन गतिविधियों का प्रमुख स्थान है, जिनमें पूरे देश के किसानों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया था।[16]

इससे पूर्व केरल के बेलुतम्मी सन् 1809 में किसान-आन्दोलन का नेतृत्व कर चुके थे। मालावार का किसान-आन्दोलन जो मोपला किसान आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। मोपला किसानों ने 1836, 1852, 1921 तथा 1925 में जमींदारों के शोषण के विरुद्ध आन्दोलन किये थे, लेकिन मोपला-किसानों के इस आन्दोलन को, 'राष्ट्रीय-नेतृत्व, विशेषकर महात्मा गांधी ने, सही परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा।'[17] पंजाब में सन् 1907 में किसान-आन्दोलन का नेतृत्व किया था सरदार भागतसिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह ने। आपने पंजाब के किसानों को इस सीमा तक आन्दोलित किया था कि पंजाब का किसान यह कह उठा था कि 'हिन्दुस्तान हमारा है' और यहीं वह कविता गाई गयी थी–'पगड़ी संभाल जट्टा पगड़ी संभाल आये।'[18] दूसरी ओर, लाहौर के लाला रतनचंद थे, जिन्होंने पहले तो अपनी धर्मशाला में सरदार अजीतसिंह को किसान-मजदूरों की सभा करने की अनुमति दे दी थी, किन्तु डिप्टी कमिश्नर द्वारा सम्पत्ति जब्त करने की धमकी मिलने पर, अपनी धर्मशाला में सभा नहीं होने दी।[19] इससे किसानों और साहूकारों की मनोवृत्ति का ज्ञान हो जाता है। किसानों को देश और उसकी जनता की समृद्धि प्रिय थी और साहूकारों को सिर्फ अपनी दौलत।

पंजाब के किसानों की तरह ही नील के जमींदारों के शोषण का विरोध करने के लिए चंपारन जिले के किसानों ने 1917-18 में आंदोलन किया था। 1919 में ही गुजरात के किसानों ने इस बात पर आन्दोलन किया था कि जिस वर्ष फसल खराब हो गई है, उस वर्ष का लगान माफ कर दिया जाए। यह आन्दोलन, इतिहास में खेड़ा आन्दोलन का समय था। इनके तीन केन्द्र थे, पंजाब में अकाली सिख-किसान गुरुद्वारे की भूमि के प्रश्न पर आन्दोलन कर रहे थे, मालावार में मोपला-किसान आन्दोलित थे और पूर्वी उत्तर-प्रदेश में अवध का किसान आन्दोलन के पथ पर था। अवध के जमींदारों के भयंकर शोषण के विरुद्ध रायबरेली और फैजाबाद का किसान आन्दोलन कर रहा था। इलाहाबाद जिले का किसान आन्दोलित था और गोरखपुर का किसान चौरी-चौरा नामक किसान-आन्दोलन को चला रहा था। लेकिन खेद है कि कांग्रेस-नेतृत्व का कोई समर्थन किसान-आन्दोलनों के साथ न था। इसका प्रमाण पं. नेहरू की आत्मकथा के इन शब्दों से मिलता है–'कांग्रेस पूर्ण रूप से एक राष्ट्रीय संस्था है, जिसमें किसान मध्य-वर्गीय जमींदार तथा कुछ बड़े जमींदार सभी हैं और वह कोई ऐसा काम नहीं करना चाहती कि वर्ग-संघर्ष पैदा हो जाए और जमींदार नाराज हो जायें।'[20] इस कथन से संकेत यह मिलता है कि कांग्रेस को जमींदारों की नाराजगी

की चिंता अधिक थी, उनके विविध शोषण से दमतोड़ते किसानों की नहीं। जब कि जमींदार अंग्रेजी-शासन की नाजायज संतान थे और किसान-देश के राष्ट्रीय-आन्दोलन में जान डालने वाले थे। इसका एक प्रमाण यह है कि सन् 1816 में बरेली की जनता ने अंग्रेजी फौज से सशस्त्र विद्रोह किया था।[21] मैनपुरी की जनता विद्रोहियों के साथ थी।[22] जसवंत नगर में भी यही हुआ था। हर जगह जनता की सक्रिय सहानुभूति और सहयोग के बल पर ही सिपाहियों ने अंग्रेजों से मोर्चा लिया था।[23]

यही स्थिति जिला आगरा की थी। यहां पांच स्थानों पर अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा लगाये गये थे। पहला, ठा. लक्ष्मण सिंह चौहान के नेतृत्व में गुरमौठी में, दूसरा मोर्चा जाट तथा चौहानों का था। यह चुल्हावली नामक स्थान पर था, तीसरा ठा. धाकरे हरदयाल के नेतृत्व में धीरपुरा पर था, चौथा मोर्चा ठाकुर निर्भय सिंह के नेतृत्व में था और पांचवा मोर्चा दहतोरा, पथौली, बिजपुरी तथा मगठई नामक गांवों के बीच में था।[24] राया (मथुरा) में देवी सिंह अपने किसानों के बल पर अंग्रेजों से मोर्चा ले रहे थे और मथुरा के सेठ लखमीचंद अंग्रेजों को धन तथा शरण देकर उनकी रक्षा कर रहे थे। विद्राही कान्तिकारियों से मथुरा के अंग्रेज कलकटर थौर्नहिल को सेठ जी ने अपने घर में छिपा कर बचाया था।[25] दिल्ली से लेकर हरिद्वार तक के किसान अंग्रेजों से लड़ रहे थे, जबकि सर्वत्र जमींदार, राजा तथा नवाब और व्यापारी अंग्रेजों को सहायता दे रहे थे। पंजाब की जनता अंग्रेज-विरोधी थी, जबकि वहां के सामंत उनके समर्थक थे। केवल भरतपुर के दो राजा ऐसे थे, जिनमें से एक ने, अर्थात् म. सूरजमल ने दुर्दान्त मुस्लिम आक्रान्ता अहमदशाह अब्दाली की धमकियों की चिंता किए बिना, पानीपत की लड़ाई में, मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ की भयंकर हार के बाद, भरतपुर में शरण लेने वाले लोगों को, उसे नहीं सौंपा। यही नहीं, उसने घायलों का इलाज कराया और राजकीय सम्मान के, समस्त महिलाओं तथा सरदारों को, उनके सैनिकों के साथ, पूना भिजवा दिया[26]। दूसरा राजा था, रणजीतसिंह, जिसनमें अंग्रेजी सेना से पराजित होकर भरतपुर के किले में शरण लेने वाले जसवन्तराव होल्कर को, लार्ड लेक के मांगने के बाद भी दिया न था और भरतपुर का घेरा डालने वाले लार्ड लेक की सेवा के तीन हजार सैनिकों को, मौत के घाट उतार कर, उसे घेरा उठाने के लिए विवश कर दिया था।[27]

राजस्थान में, वहां ठिकानेदारों के विपरीत, विजयसिंह 'पथिक' के नेतृत्व में बिजौलिया किसान-आन्दोलन 1920-1928 तक चलता रहा था। इसी तरह

शेखावटी का किसान-आन्दोलन 1934 से 1954 तक, वहां के किसानों के नेतृत्व में चला था। तात्पर्य यह है कि देश का समूचा किसान आन्दोलन कर रहा था, अंग्रेज-शोषकों को मार कर भगा रहा था और इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन को सशक्त तथा प्रभावशाली बना रहा था और जमींदार, राजा, नवाब तथा व्यापारी उसको कमजोर कर रहे थे। किसानों के प्रति कांग्रेस-नेताओं का दृष्टिकोण फिर भी सहानुभूतिपूर्ण न था। पंडित नेहरू का कथन है—'हमारी प्रांतीय कार्यकारिणी में एक भी काश्तकार या गरीब किसान न था। इन कोंसिलों में मध्य वर्ग के पढ़े-लिखे लोगों की ही तादाद बहुत ज्यादा थी और जमींदारों का भी बहुत प्रभाव था।'[28] इसलिए पंडित जी इस कोंसिल को गरम विचारधारा की नहीं मानते थे, किसानों के सवाल पर तो निश्चय ही नहीं। कांग्रेस का यह रूप, किसी भी प्रकार से किसान-समर्थक नहीं कहा जा सकता। कांग्रेस का यही चरित्र, महात्मा-गांधी से विरासत में पंडित जी को मिला था। तत्पश्चात् वह मोरारजी देसाई तक आ गया था। श्रीमती इंदिरा गांधी तथा उनके पुत्र राजीव गांधी इस वैचारिक विरासत का प्रतिवाद कैसे हो सकते थे? अस्तु, जनता-पार्टी के मंच से, जब चौधरी साहब द्वारा निर्धारित 'किसान मैनीफेस्टो' के कार्यान्वित करने का प्रश्न उठा तो एक ओर मोरारजी देसाई अड़ गये और दूसरी ओर सत्तालोलुप श्रीमती गांधी कूटनीति का जाल बिछाकर उस पर आघात करने के लिए खड़ी हो गयीं थीं। मोरारजी को हरियाणा के किसान-नेता चौधरी देवीलाल भी अपने शत्रु नजर आये और चौधरी साहब भी। इसको उनका मतिभ्रम कहना ही उचित होगा, लेकिन इससे एक महान् क्रांति विफल हो गई। इस क्रान्ति की विफलता के साथ ही देश के किसान, मजदूर और आम आदमी के आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष का कार्य ठहर गया।

कांग्रेस से अलग होकर, पंजाब में किसान तथा गरीबी के आधार पर, दीनबंधु चौधरी छोटूराम ने हिन्दू तथा मुसलमानों की एक मंच पर संगठित करने में सफलता पाई थी, जिसको न जिन्ना साहब धर्म के नाम पर तोड़ पाये थे, न गांधी के नाम पर कांग्रेस। वह एकता केवल टूटी तब, जब कांग्रेस ने धर्म तथा जाति के आधार पर, देश का विभाजन स्वीकार कर लिया था, जिसकी भयंकर विभीषिका से, पचास वर्ष बाद भी जनता को मुक्ति नहीं मिली है। कांग्रेस के नेता, दिल्ली की सरकारी इमारतों पर रोशनी करके खुशियां मना रहे थे, दूसरी ओर पंजाब तथा बंगाल की हिन्दू जनता संकीर्णतावादी तथाकथित धार्मिकों की पाशविकता का शिकार हो रही थी। बहुसंख्यक समाज के साथ अन्याय,

कांग्रेस-संस्कृति का विशेष अंग था और उसका शिकार, आपातकालीन त्रासदी के बाद उभर कर आई किसान-क्रान्ति और उसके कर्णधारों को भी होना पड़ा था। केवल दुःख इस बात का है कि कांग्रेस के राजनीतिक चरित्र से भली प्रकार परिचित चन्द्रशेखर जैसे समाजवादी और भारतीय संस्कृति के साथ प्रतिबद्धता का दावा करने वाले नेता भी, जाने या अंजाने में, श्रीमती गांधी की परिवार-पोषक नीति के अंग बन गये। जरूरत इस बात की थी, कि वे सब देश के एक बड़े वर्ग के प्रतिनिधि और निहायत ईमानदार व्यक्ति चौधरी चरण सिंह का साथ देते। यदि ऐसा हुआ होता तो न तो बोफोर्स कांड होता, न केतन पारिख जैसे दलाल पनपते, न यू. टी. आई. कांड होता, न अपहरण तथा हत्या के काण्ड होते, न रिश्वतखोरी के दानव का शिकार सरकारी कार्यालयों के अधिकांश कर्मचारी होते, न भारत की अर्थनीति देश के धनवानों के संकेतों पर नाचती, न दुनिया के 174 देशों में भारत का स्थान 128वां होता, न देश में लगभग 40 करोड़ लोग गरीब होते, न देश के मंत्री लोकतंत्र की मर्यादाओं की धज्जियां उड़ाते, न 1990-91 की बचत दर 3.81 प्रतिशत रही होती, न कृषि-विकास की दर 2000 के बीच घटकर 1.74 प्रतिशत आ गई होती और न देश की 85 प्रतिशत आबादी आर्थिक सुधारों के बोझ तले सिसकने पर विवश हुई होती।

संदर्भ

1. अनिरुद्ध पाण्डेय, धरती पुत्र चौधरी चरण सिंह, पृष्ठ 149
2. वही, पृ. 150
3. वही, पृ. 41
4. वही, पृ. 42

5-6-7. वही

8. आर. के. हुड्डा, मैन ऑफ द मैसेज, पृष्ठ 49
9. रिसी, रोमाज, पृ. 42
10. जयचन्द्र विद्यालंकार, इतिहासप्रवेश, पृ. 286
11. वही, पृ. 286
12. संपादक डा. नत्थन सिंह, उत्तर भारत के जाटों की शासन व्यवस्था, पृष्ठ 219
13. वही, पृ. 220
14. वही, पृ. 221
15. डा. रामविलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज्य और माकर्सवाद, भाग-2, पृ. 308
16. देखों, डा. रामविलास शर्मा की पुस्तक '1857 की राज क्रांति'

17. डा. महेन्द्र प्रताप, उत्तर भारत में किसान आन्दोलन, पृष्ठ 49
18. वीरेन्द्र संधू, युग-दृष्टा भगत सिंह, पृष्ठ 59
19. वही, पृ. 57
20. जवाहरलाल नेहरू, एन. ऑटोग्राफी, पृ. 232
21. डा. रामविलास शर्मा, सन सत्तावन की राजक्रांति, पृष्ठ 170
22. वही, पृ. 169
23. वही, पृ. 169
24. डा. नत्थन सिंह, खेत-खलिहान से राजधानी का सफरनामा, पृ. 84
25. मथुरा, गजटियर, पृ. 47
26. डा. नत्थन सिंह, इतिहास पुरुष : महाराजा सूरजमल, पृ. 108, गिरीशचन्द द्विवेदी, जाट्स, पृ. 160
27. मथुरा गजटियर, पृ. 45
28. पं. जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी, पृष्ठ 509, वर्ष अक्टूबर 1938 संस्करण

एक विचारक के रूप में

स्वर्गीय चौधरी चरण सिंह देशा के उन थोड़े से लोगों में से एक थे, जो उच्चकोटि के विचारक भी होते हैं और अपने विचारों पर दृढ़तापूर्वक आचरण भी करते हैं। यही कारण है कि आज उनके राजनीतिक विरोधी भी उनकी नीतियों तथा उनके व्यक्तित्व की गरिमा की भूरि-भूरि प्रशंसा करके अपना जनाधार बढ़ाने का प्रयास करते हैं।

यथार्थ में हमारे समाज और देश का, सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि यहां का बड़े-से-बड़ा राजनीतिक नेता लोकतंत्र, जनहित और नैतिकता के उपदेश देता है, पर स्वयं उनके अनुरूप आचरण नहीं करता। फलतः देश में गरीबी, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, लूटपाट और गुंडा-गर्दी घटने के स्थान पर बढ़ी है। लगभग यही स्थिति धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र की है। लोग धर्म, नैतिकता और अध्यात्म की बात तो करते हैं, पर आचरण के स्तर पर आडम्बरों का पालन करते हैं। वे मंदिरों में राम और कृष्ण की पूजा तो करते हैं, पर राम तथा कृष्ण के आदर्शों का पालन नहीं करते, वे मंदिर और मस्जिद के नाम पर शोर तो करते हैं, पर वे इन पूजा-स्थलों की छाया में होने वाले कुकर्मा का विरोध नहीं करते, वे धार्मिक होने का प्रचार तो करते हैं, पर वे यह नहीं जानते क़ि वे केवल साधन को साध्य माने बैठे हैं और देश तथा समाज के परिवेश में तनाव पैदा कर रहे हैं। वे यह भी नहीं जानते कि धर्म आचरण का विषय है, केवल आस्था या विश्वास का नहीं, वह अन्तकरण के शोधन एवं संस्कार का मार्ग है, केवल पूजा-पाठ तथा भजन-कीर्तन का नहीं। वे यह भी नहीं जानते कि धर्म मानव-कल्याण का मार्ग है और भारत की सांस्कृतिक अस्िता के रक्षण का साधन है। वे 'हरे राम', 'हरे कृष्ण' तो चीखते हैं, पर भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा की दिशा में, राम तथा श्रीकृष्ण द्वारा अपनाये गये मार्ग पर एक डग चलने का साहस नहीं करते। असल में, वे धर्म की यथार्थ भावना का विस्मरण करके सिर्फ पूजा-पाठ का आडम्बर करते हैं और यह नहीं जानते कि राम ने रावण से केवल

एक नारी सीता का उद्धार ही नहीं किया था, वरन् आसुरी संस्कृति द्वारा भारतीय संस्कृति की अस्मिता को कुचलने से बचाया था। इसी तरह, श्रीकृष्ण ने गोपियों का ही चीर-हरण नहीं किया था, वरन् साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा भारतीय नारी की अस्मिता-हरण के प्रयास को रोका था और मथुरा तथा पाटलिपुत्र की साम्राज्यवादी शक्तियों का ध्वंस कराके, लोकतंत्र की रक्षा की थी। उनके द्वारा अठारह जातियों के संघ की स्थापना, लोकतंत्र की रक्षा का सर्वोत्तम उदाहरण है।

धार्मिक आडम्बरों को ही धर्म मान बैठे ये लोग, यह समझने की कोशिश भी नहीं करते कि राम तथा श्रीकृष्ण दोनों ने ही जातीय भेदभाव को नकार कर तथाकथित धार्मिकों द्वारा प्रताड़ित अहिल्या जैसी नारी का उद्धार किया था, शबरी जैसी अवर्ण नारी को महत्त्व दिया था, जंगलों में रहने वाली जातियों को गले लगाया था, उनको भाई जैसा स्नेह प्रदान किया था। यह था वह धर्म, जिसके पालन करके राम पूज्य बने थे। श्रीकृष्ण ने मथुरा-मण्डल की जनता तथा नारी वर्ग की अस्थिरता की रक्षा मगध-सैनिकों तथा कंस के शोषण से की थी और लोक-विरोधी सामंती-शासन का अंत किया था। वह शासन चाहे कंस का रहा हो, चाहे जरासंघ और चाहे दुर्योधन तथा दुःशासन का। इन्हीं लोकहितकारी कार्यों से कृष्ण पूजा के योग्य बने थे। लेकिन स्वार्थी लोगों ने राम तथा श्रीकृष्ण को, मंदिरों में बिठाकर, आमदनी का साधन बना लिया और इसी को धर्म के रूप में प्रचारित भी कर दिया।

स्वर्गीय चौधरी साहब, इसको धर्म नहीं मानते थे। उनके लिए धर्म शुद्ध आचरण था, लोकहित का साधन था, सब लोगों को समान समझने की भावना थी और सभी जातियों को बराबर मानने की चेतना थी। धर्म के इस रूप को, उन्होंने अपने आचरण के स्तर पर उतारा था। इस बात के कई उदाहरण आगे दिये गये हैं। आपने अपने विभागों में, भ्रष्टाचार को पनपने नहीं दिया, जनता के हितों को हमेशा प्राथमिकता प्रदान की, शादी-व्यवहार के क्षेत्र में, जातीय संकीर्णता का प्रवेश न होने दिया और प्रशासनिक शिथिलता को कभी सहन नहीं किया। यह था, उनका यथार्थ धर्म। सादा जीवन और शुद्ध आचरण, उनके धर्म के यथार्थ रूप थे। धर्म-विषयक यही उनकी नीति थी। उनके लिए न कोई अस्पृश्य था, न ब्राह्मण, न क्षत्रिय या वैश्य। सब समान थे, सब ग्राह्य थे और वह उन धर्म के ठेकेदारों से पूर्णतः अलग थे, जिनको न मादक पदार्थों के प्रयोग से परहेज होता है न परनारी-सहयोग से अरुचि और जो पूरे आडम्बरों के साथ, पूजा-पाठ में लीन रहते हैं तथा उसी को धर्म बताकर भोली जनता को गुमराह

भी किया करते हैं।

चौधरी साहब न तो महाभारत के श्रीकृष्ण के समान गीता के धर्म तथा योग का उपदेश देने वाले व्यक्ति थे, न महावीर, बुद्ध तथा महर्षि दयानन्द की भांति, धर्म तथा अध्यात्म का तात्विक विश्लेषण करने वाले थे, न मध्ययुगीन पंडित तथा पुरोहितों के समान, परम तत्व तथा ईश्वर के स्वरूप का आख्यान करने वाले थे और न आजकल के आश्रम चलाने वाले महात्मा तथा गुरुओं की तरह धर्म के नाम पर पूजा-पाठ, शब्द-कीर्तन तथा गुरु-पूजा का उपदेश देने वाले थे। तत्व के विचारक वह अवश्य थे, पर उपदेशक अथवा उपदेशों की आडम्बरपरक प्रक्रिया को पूरा करने वाले न थे।

यथार्थ में वह धर्म या अध्यात्म को चिंतन के साथ-साथ आचरण का अंग मानते थे। आजकल के गुरुओं की तरह, स्थान-स्थान पर एक-दिवसीय या दो दिवसीय कैम्प लगाकर उपदेशों की बौछार करने तथा कीर्तन की आंधी चलाने के वह पक्षधर न थे। उनके दिमाग में एक सदाचारी, धर्मप्राण और अच्छा इंसान बनने के लिए कुछ बातें थीं। उनको ही आपने 'शिष्टाचार' नामक अपनी किताब में विस्तार से विश्लेषण का अंग बनाया है।

शिष्टाचार के अर्थ और स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आपका कथन है—'शिष्टाचार' शब्द का अर्थ है शिष्टों का आचार अथवा सभ्य लोगों का व्यवहार अथवा सज्जन व्यक्तियों का आचरण।'[1] शिष्टाचार के अन्तर्गत व्यवहार या आचरण की कौन-सी विशेषताएं आती हैं? इस पर प्रकाश डालते हुए आप बताते हैं—'शिष्टाचार के अन्तर्गत मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन के प्रत्येक कार्य-उदाहरणार्थ उसका रहना-सहना, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-चालना, सोना-जागना, नहाना-धोना आदि सभी आते हैं।'[2] इसका मतलब यह हुआ कि एक व्यक्ति को अपने घर तथा बाहर कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे, किसी अन्य व्यक्ति की भावनाओं को ठेस लगे और किसी को कोई दुःख या परेशानी हो। आप, शिष्टाचार के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए यह बताना चाहते हैं कि हरेक भले आदमी को, सामाजिक प्राणी होने के नाते, दूसरों के साथ व्यवहार करते समय, जिन बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है, उसका ही नाम शिष्टाचार है।

इस सन्दर्भ में आप बताना यह चाहते कि जब कोई व्यक्ति किसी से मिले तो विनम्रतापूर्वक उसको 'नमस्ते' या 'नमस्कार' कहकर उसका अभिवादन करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति घर पर आये तो स्नेह अथवा आदरपूर्वक उसका स्वागत करना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति से भेंट करनी हो तो उसके कक्ष में

प्रवेश करने से पहले जूते उतारने चाहिए। अपने घर पर किसी के आने पर आदर के साथ उसका स्वागत करना तथा पान-इलायची आदि देकर सत्कार करना अच्छे शिष्टाचार का परिचायक होता है।

शिष्टाचार के अन्तर्गत, आपने गृहस्वामी के कर्तव्य, घर के अन्य व्यक्तियों के कर्तव्य, यथा परिचय तथा हाथ मिलाकर आदर करने की बात भी कही है।[3] आप यह भी कहते हैं कि 'हाथ मिलाने के लिए हमें खड़े होना चाहिए। बैठे-बैठे अथवा अपनी कुर्सी पर पीछे की ओर पीठ कर लापरवाही से मिलाने के लिए हाथ बढ़ाना अत्यंत अशिष्टता है।'[4]

अतिथि को किन नियमों का पालन करना चाहिए, इस सम्बंध में आपने बताया है कि 'अगर आप किसी मित्र के अतिथि बनें तो अवसर पाकर उस पर यह प्रकट कर दें कि आपका विचार कब तक उनके पास ठहरने का है और जब वह काल बीत जाए, तो आपको फौरन विदा ले लेनी चाहिए।'[5] शोक अथवा संवेदना प्रकटीकरण के विषय में आपका कथन है–'अपने मित्र, पड़ोसी तथा सम्बंधी के घर पाकर उसके रंज में संवेदना प्रकट करना मनुष्य का परम कर्तव्य है।'[6]

भारतीय संस्कृति में सहभोज का विशेष महत्त्व होता है। इसके लिए बुलावा आना और उसमें सम्मिलित होना सम्मान का विषय समझा जाता है। अस्तु, सहभोज में भाग लेते समय भी कुछ विशेष नियमों एवं परंपराओं के निर्वाह की आवश्यकता होती है। उनका निर्वाह न करने वाले व्यक्ति को असभ्य तथा असांस्कृतिक माना जाता है। अतः आप सहभोज के नियमों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–सहभोज में शामिल होने के लिए पहुंचने पर 'पहले गृहस्वामी से अभिवादन व एक-आध बात करने का यत्न करें और अन्य मित्रों को सम्बोधन बाद में करें।'[7] निमंत्रित व्यक्तियों के समुचित आचरण की ओर इशारे करते हुए आप लिखते हैं–'आसन पर बैठते समय शीघ्रता न करें और भोज के उपरांत सबसे पहले ही हाथ-मुंह धोने की चेष्टा करें।'[8] एक अन्य आचरण की ओर संकेत करते हैं–'भोजन के समय कोहनी की दोनों ओर इस प्रकार न फैलायें कि पास में बैठे हुए सज्जनों को किसी प्रकार की असुविधा हो।'

सहभोज के समय सभ्य आचरण के आवश्यक नियमों की चर्चा भी आपने की है, यथा-भोजन करते समय जहां तक हो सके पत्तल या थाली में जूठन न छोड़ें, भोजन करते समय पानी तथा अन्य पदार्थ इस प्रकार उठायें कि वह किसी की पत्तल या थाली में न गिर पड़े, आतिथेय के पूछने पर भी किसी

पदार्थ की निंदा न करें, जब भोजन समाप्त कर लिया हो तो नेपकिन को बिना तय किये अपने सामने मेज पर रख दें, भोजन के समय सबको एक साथ ही उठना चाहिए और भोजन-स्थल से चलते समय आतिथेय के प्रबंध तथा भोजन की प्रशंसा करके विदा होना चाहिए।[9] इन संक्षिप्त सुझावों से यह संकेत मिलता है कि चौधरी साहब की दृष्टि, व्यक्ति को समयानुसार सभ्य आचरण की समस्त शैली को बताने पर टिकी थी। हमारे आज के समाज में, इन बातों पर ध्यान देने तथा आचरण करने की बड़ी आवश्यकता है। नयी पीढ़ी को, इनसे परिचित कराने के लिए, ऐसी रचना को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बना देना चाहिए।

इसी तरह जनसमवाय के आयोजकों तथा उनमें शामिल होने वालों को किस प्रकार के आचरण का निर्वाह करना चाहिए, यह सब बताया गया है। व्यक्ति को किस समय, किस प्रकार की वेशभूषा का प्रयोग करना चाहिए, इस पर आपने अपना परामर्श दिया है। आपका परामर्श है कि 'समाज के प्रमुख और समझदार व्यक्तियों को शरीर की अधिक सजावट, वेशभूषा की भिन्न-भिन्न प्रणालियों, फैशन तथा फैशन के साधनों, आभूषणों आदि से दूर रहना चाहिए।'[10] आपकी मान्यता है कि 'समाज में ग्राहकता गुणों की होती है, न कि बाहरी सजधज की।'[11]

इसी प्रकार पैदल यात्रा करते समय, अथवा रेल-यात्रा के समय, व्यक्ति को किस प्रकार का व्यवहार, कार्य या आचरण करना चाहिए? इस पर भी प्रकाश डाला गया है। चलते समय जोर-जोर से बातें करना, किसी को पुकारना, सीटी बजाकर चलना, पीछे फिर कर बार-बार देखना और किसी को घूरना असभ्यता का प्रतीक आपने बताया है।[12]

आपने इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि पत्र कैसे लिखा जाना चाहिए? आपकी राय है कि 'पत्र में कभी कोई खुशामदाना वाक्य अर्थात ऐसी बात लिखनी उचित नहीं है, जिससे यह प्रकट हो कि आप उपकी कृपा चाहते हैं या उसके लिए बहुत उत्सुक हैं।[13] इस प्रकार वह बताते हैं कि किसी मित्र को उसके सम्बंधी की मृत्यु पर पत्र लिखते समय, मृतक के रोग अथवा मृत्यु के प्रकार के विषय में नहीं लिखना चाहिए।[14] एक स्थान पर, उनका सुझाव है कि 'अपने नाम के आगे अपनी पदवियां लिखना उचित नहीं।'[15] सारांश यह है कि चौधरी साहब की दृष्टि आचरण की सादगी, संजीदगी, निर्भिमानता तथा पवित्रता पर केन्द्रित रही है। उनकी दृष्टि में यही धर्म है, भारतीय संस्कृति का सार भी यही है।

बातचीत गरिमा तथा शालीनतापूर्वक होनी चाहिए। इस बात पर बल देते

हुए आपने लिखा है–'समाज में बैठकर न अधिक बोलना चाहिए और न चुप ही रहना चाहिए।'[16] शेखसादी को उद्धृत करते हुए आप लिखते हैं–'बात करने के मौके पर चुप रहना और चुप रहने के अवसर पर बोलना', दोनों ही मूर्खता के प्रतीक हैं।[17] आप मनुष्य को मितभाषी होने का परामर्श देते हुए कहते हैं कि व्यक्ति को प्रिय वाक्य बोलने वाला होना चाहिए। बातचीत कैसी होनी चाहिए, इस सम्बंध में शेखसादी, शैक्सपीयर, तुलसी, कबीर, चाणक्य, वेद, महाभारत तथा नीतिशास्त्र से उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'भले आदमी को चाहिए कि न ताना दे, न लानत भेजे और न कटु या अशिष्ट वाक्य कहे, अच्छी मीठी बात कहे वरना चुप रहे।'[18]

उत्तम बातचीत की शैली बताकर आप अच्छे तथा संयत हास-परिहास, भाषा, निन्दा-स्तुति के रूप, बोलने के समुचित अवसर, बातें सुनने की कला, सम्बोधन के रूप, धन्यवाद-ज्ञापन अथवा क्षमायाचन की शैली के श्रेष्ठ रूप का भी ज्ञापन कराते है। इसी संदर्भ में, बातचीत का ढंग तथा बातचीत के विषय का विवेचन करते है। आपका परामर्श है कि 'जिससे बातचीत की जाए उसकी अवस्था व योग्यता आदि का विचार रखना आवश्यक है।'[19]

बातचीत की श्रेष्ठता के रूप को बताकर आप विशिष्ट व्यवहार के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि गुरुजन, स्त्री-पुरुष, विद्यार्थी, मित्र, पड़ोसी, दुकानदार, ग्राहक, स्वामी-सेवक का परस्पर तथा अन्यों के साथ व्यवहार सहज, सरल तथा शिष्ट होना चाहिए। आपने यह बताने में भी चूक नहीं की है कि पार्क में से फूल नहीं तोड़ने चाहिए, रेल के डिब्बे में थूकना नहीं चाहिए, सड़क पर गाड़ी खड़ी नहीं करनी चाहिए, पदाधिकारियों को अपने अधीनस्थ लोगों से व्यक्तिगत काम नहीं लेना चाहिए,[20] 'दूसरों की चीजों को या किसी की धरोहर को बिना उसके मालिक की आज्ञा के कदापि काम में नहीं लाना चाहिए।[21]

श्रेष्ठ आचरण के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के बाद आप स्वास्थ्य की रक्षा और उसके महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। आपकी नजर में धर्मशास्त्र का यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि 'धर्मार्थ काम मोक्षाणामरोग्यं मूलमुत्तमम्' अर्थात् धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष इन चारों में उत्तम जड़ शरीर का आरोग्य ही है।'[22] यह कहकर आप स्वास्थ्य-रक्षा के उपायों में शुद्ध, पुष्टिकारक भोजन, गहरी निद्रा, नियमित व्यायाम, नियमित दिनचर्या और स्वच्छता को मानते हैं।[23] आपको, इस वास्तविकता पर बड़ा दुःख है कि वीर-प्रसूता भारत की भूमि 'आज कायर, मृतप्रायः दुर्बल आत्मा और दुर्बल शरीर वाले व्यक्तियों के रहने का स्थान बन गयी है।'[24]

इसका कारण बताते हुए आप कहते हैं कि 'हमारे देश के लाड़ले नौजवान दैव पर भरोसा रख, हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहते हैं और ढाक के वृक्ष को भूत समझ कर बेहोश हो जाते हैं।'[25] आपको विश्वास है कि एक दिन 'अवश्य ऐसा आयेगा, जब हमारे देश के नौजवान भी स्वस्थ बनकर छाती चौड़ी करके इस भूमि पर विचरेंगे और संसार की दौड़ में यश लूटकर अपने को धन्य करेंगे और भारत-माता का मस्तक ऊंचा करेंगे।'[26]

ये पंक्तियां चौधरी साहब की देशभक्ति का प्रमाण है। वह भारत माता के शीश को ऊंचा होते तथा उसकी संतान को सशक्त देखना चाहते हैं। दूसरी ओर वे लोग हैं, जो दूध में यूरिया, शहद में चीनी, हल्दी तथा चाय में रंग, घी में वनस्पति तेल व सरसों के तेल में ड्राप्सी तथा अन्य खाद्य पदार्थों में विषाक्त पदार्थ मिलाकर लोगों की जान लेते हैं अथवा उनको विषम रोगों का शिकार बना देते हैं और सारा काम सरकारी-अधिकारियों को ठेंगा दिखाकर करते हैं। वास्तव में ऐसे लोग देश के गद्दार हैं। शायद कोई समय अवश्य ऐसा आयेगा, जब इन लोगों का स्थान कारागाहों में होना और शुद्ध पदार्थो को खाकर देश का नौजवान भगत सिंह, आजाद तथा अशफाक उल्लाह खां बनकर आगे आयेगा?

चौधरी साहब की मान्यता है कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए व्यक्ति को प्रातःकाल शैया से उठ जाना चाहिए, नित्य कर्म करके शरीर को स्वच्छ करना, दांत, नाक-मुंह तथा नाखूनों को साफ करना चाहिए, तेल-मर्दन, स्नान, व्यायाम, खेल, व्यायाम हेतु तैरना या टहलना आदि स्वास्थ्य के लिए आप अनिवार्य बताते हैं। लिखना-पढ़ना तथा नेत्र-व्यायाम पर भी बल देते हैं। आपने नेत्र-व्यायाम की विधि पर भी विस्तार के साथ विचार किया है।[27] यदि कोई, इनके द्वारा बताये गये तरीकों से नियमित व्यायाम करता रहे तो वह सब प्रकार से स्वस्थ और समर्थ हो सकता है। इस तरह व्यक्ति की शक्ति, समूचे देश को शक्तिशाली बना सकती है। यही चौधरी साहब का उद्देश्य भी है। वह मानते हैं 'स्वस्थ व्यक्ति है तो स्वस्थ समाज होगा और स्वस्थ समाज सबल एवं स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण कर सकेगा।

अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए जिन अन्य सिद्धांतों तथा आचरणों की आवश्यकता होती है, उनमें चौधरी साहब की दृष्टि से घर की सफाई रखना, थूकने का स्थान, शुद्ध वायु, प्राणायाम, सांस लेना, प्रकाश, शुद्ध पानी, समुचित एवं यथावश्यक भोजन का महत्त्व है। आप यह भी बताते हैं कि भोजन किस समय, किस मात्रा में, किस प्रकार का किया जाए और भोजन के पश्चात् उचित स्थान पर हाथ, मुंह, दांत आदि की उचित सफाई की जाये। भोजन के बाद

और लोगों के सामने दांतों को ऊंगली से न कुरेदना चाहिए, न ब्रुश आदि से साफ करना चाहिए। आप यह भी कहते हैं कि दोपहर को भोजन करने के बाद सोना उचित नहीं है और रात के समय, भोजन करने के तीन घंटे बाद ही सोना चाहिए।[28] आपका कहना यह भी है कि 'बीमारी की अवस्था को छोड़कर, पाचन के लिए कोई चूर्ण व शर्बत आदि का प्रयोग न करना चाहिए। दस्तावर या हाजमा करने वाली औषधियों से लाभ के बदले उलटे हानि होती है।[29]

शयन की अच्छाई पर प्रकाश डालते हुए बताते हैं कि 'स्वप्न रहित गहरी नींद ही सुखदायक व स्वास्थ्यवर्द्धक होती है। इस तरह की नींद लाने के लिए आपका सुझाव है कि दिन में खूब परिश्रम किया जाए।[30] नींद लेने के लिए चारपाई कैसी हो, स्थान कैसा हो, सोने का समय कौन-सा हो और इसकी पूर्णता के लिए दूसरों का कर्तव्य क्या है?[31] आप नियत समय पर सोने, सूर्योदय से पूर्व जागने और गर्मी से बचने के लिए वस्त्रों को भिगोकर पहनने का विरोध करते हैं। ब्रह्मचर्य को, आप अच्छे स्वास्थ्य का रहस्य बताते हैं।[32]

'नीति और शिष्टाचार' शीर्षक के अन्तर्गत, आप बताते हैं कि बच्चों के साथ प्यार तथा स्नेह का व्यवहार करना चाहिए, यथासम्भव क्रोध करने से बचना चाहिए, संयम तथा संतुलन बनाये रखना आवश्यक है, श्रेष्ठ लोगों का सत्संग और अच्छे ग्रंथों का पढ़ना जीवन के लिए आवश्यक है, मन में सत्य, दया और न्याय के लिए लगाव होना भी एक विशेष गुण है और यथासम्भव परोपकार-प्रियता व्यक्तित्व का अंग होना भी जरूरी है। धन के विषय में आपकी मान्यता है कि 'अधिक धन कमाने से नहीं, कमाये धन की रक्षा करने से मनुष्य धनी होता है।[33] परिश्रम से अर्जित करने का परामर्श भी आप देते हैं।[34] दान करने, ईर्ष्या तथा मत्सर से बचने, वदला लेने की भावना के त्याग, विनयशील बनने तथा अहंकार के त्याग, संतोष करने, प्रसन्नतापूर्वक रहने, कर्म तथा अकर्म का ख्याल रखने, निराशा से बचकर आशावान बने रहने, शक्तिशाली बनकर अपने अधिकारों से किसी को परेशान न करने और जीवन का निश्चित एवं उदात्त उद्देश्य बनाये रखने आदि को आप अच्छे आचरण का अंग मानते हैं। अंत में आप, मालिक-नौकर के बीच, श्रेष्ठ तथा मानवीय सम्बंध, किस प्रकार के हों, इस विषय पर एक ग्यारह सूत्री प्रारूप प्रस्तुत करते हैं और मित्रता के महत्त्व का प्रतिपादन भी करते हैं।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि चौधरी साहब एक श्रेष्ठ शिक्षक, सर्वोत्तम मार्गदर्शक, समाज एवं राष्ट्रहित के साथ प्रतिबद्ध दरवेश की तरह उन

बातों का ज्ञान कराते हैं, जो व्यक्ति को एक अच्छा इंसान बना सकती हैं। वे उसको स्वस्थ एवं रोगहीन आदमी बनाकर समाज तथा राष्ट्र के लिए उपादेय बनाने में सहायक होती हैं। वह भली प्रकार जानते थे कि देहाती क्षेत्रों के अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित किसानों के पास न तो इतना समय होता है और न इतना व्यावहारिक ज्ञान कि वे अपने बालकों को अच्छे शिष्टाचार से सम्बंधित बातों का ज्ञान करा सकें। उनको यह भी विश्वास था कि भावी पीढ़ी को उच्च-कोटि का चरित्रवान, सामाजिक तथा राजनीतिक नेता बनाने के लिए, शिष्टाचार विषयक इन बातों का ज्ञान होना नितांत आवश्यक है। इसके अभाव में वह श्रेष्ठ मार्ग पर चलने के बजाए ऐसे मार्ग पर भी जा सकती है, जिससे समाज एवं राष्ट्र के लिए संकट पैदा हो सकता है। इस संकट के निवारण के लिए ही आपने इस पुस्तक की रचना की थी। वह उपदेशक न होते हुए भी उपदेशक की कोटि में आ जाते हैं, दरवेश न होकर भी दरवेश का काम करते हैं, धर्मोपदेशक न होते हुए भी अच्छे गुणों के प्रचारक बन जाते हैं और अध्यापक न होते हुए भी एक अच्छे अध्यापक का काम कर देते हैं। इससे सिद्ध हो जाता है कि चौधरी साहब केवल एक राजनीतिक नेता ही नहीं थे, वह राजनीति के माध्यम से, समाज-सुधारक और राष्ट्रनिर्माता भी थे। उनकी विशेषता यह थी, उन्होंने भारतीयों को एक श्रेष्ठ इंसान बनाने के लिए जो कुछ कहा है, उसका पालन भी किया है। तुलसी का कथन है कि 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे' अर्थात् दूसरों को उपदेश देने वाले लोग तो हमारे समाज में बहुत मिलते हैं, लेकिन उपदेश के सिद्धान्तों पर आचरण करने वाले लोग बहुत थोड़े होते हैं। भारत के राजनीतिक जीवन में आज नेताओं का सैलाब आ रहा है, लेकिन उनमें से अधिकांश लोग ऐसे हैं, जो न तो अपने देश के हितों के साथ जुड़े हैं, न भारत की महान् सांस्कृतिक विरासत के साथ प्रतिबद्ध हैं और न उन मतदाताओं के हितों का ख्याल रखते हैं, जिनके मतों के बल पर वे विधायिकाओं तथा संसद में पहुंचते हैं।

एक अच्छे व्यक्ति की दिशा क्या होनी चाहिए, यह जानने के लिए चौधरी साहब द्वारा लिखित 'शिष्टाचार' नामक पुस्तक पढ़ना उतना ही आवश्यक है, जितना आवश्यक जीवित रहने के लिए भोजन करना।

संदर्भ

1. चौधरी चरण सिंह, शिष्टाचार, पृ. 3, द्वि. सं. 1994

2. वही
3. वही, पृ. 22
4. वही, पृ. 23
5. वही, पृ. 24
6. वही, पृ. 27
7. वही, पृ. 30
8. वही, पृ. 31
9. वही, पृ. 31
10. वही, पृ. 43
11. वही
12. वही, पृ. 47
13. वही, पृ. 59
14. वही
15. वही
16. वही, पृ. 60
17. वही
18. वही, पृ. 61
19. वही, पृ. 62
20. वही, पृ. 71
21. वही, पृ. 82
22. वही, पृ. 89
23. वही, पृ. 90
24. वही, पृ. 91
25. वही, पृ. 91-92
26. वही, पृ. 92
27. वही, पृ. 118
28. वही, पृ. 152
29. वही
30. वही, पृ. 154
31. वही, पृ. 158
32. वही, पृ. 161
33. वही, पृ. 182
34. वही, पृ. 183

चौधरी साहब की आर्थिक नीति

चौधरी चरण सिंह की आर्थिक-नीति का मूल आधार देश की आम जनता थी। उसको ध्यान में रखकर ही वह अपनी आर्थिक एवं प्रशासनिक नीति का निर्धरण किया करते थे। जनता की आर्थिक स्थिति को सुधारना केवल उनका सिद्धांत ही नहीं था, वरन् उनके काम का महत्त्वपूर्ण अंग था। इस दृष्टि से स्वाधीन भारत की कई केन्द्रीय सरकारों तथा उसके नेताओं के वह अपवाद थे। आज तक, प्रायः प्रत्येक सरकार ने नारे प्रत्येक व्यक्ति को रोजी, रोटी ओर मकान देने के लगाये हैं, लेकिन गम्भीरतापूर्वक अपने नारों पर काम नहीं किया। यही कारण है कि देश में गरीबी घटी नहीं, बढ़ी है, बेरोजगारी कम नहीं हुई, बढ़ती जा रही है, गरीबी-अमीरी में अन्तर कम नहीं हुआ, बढ़ा है। चौधरी साहब की यह नीति नहीं थी। अन्य राजनीतिक दल पार्टी-फण्ड के नाम पर धन उद्योगपतियों से लेते थे और आज भी ले रहे हैं, अतः आर्थिक-हित भी अपने फण्ड-दाता का करते थे और वोट लेने के लिए आश्वासन जनता को देते थे। ये जनता का पेट आश्वासनों से भरते आये हैं, सम्पत्ति से घर उद्योगपतियों एवं व्यापारियों का भरते रहे हैं। अपनी आर्थिक-नीति में वह इस विरोधाभास को उजागर करते हैं।

वह अपने व्याख्यान में कहा करते थे कि किसी कस्बे के बाजार में रौनक हो तो समझ लेना चाहिए कि उसके आस-पास की जनता की माली हालत अच्छी है। यही कारण है कि कस्बे तथा शहरों के दुकानदारों तथा व्यापारियों की माली हालत को ठीक करने के लिए आपका नुस्खा था जनता की माली हालत को ठीक करना। अतः यह कहना असंगत न होगा कि उनका नुस्खा ठीक था और जनता को गरीब बनाये रखने वाले नेताओं का गलत रहा है। उनका नुस्खा था घरेलू उद्योगों को बढ़ावा देना। प्रमाण है, ये पंक्तियां–'1931 की जनगणना रिपोर्ट से पता चलता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा ब्रिटिश सरकार की नीतियों के कारण 1930 तक हमारे कारीगरों और दस्तकारों का 50 प्रतिशत खेती की

ओर 24 प्रतिशत अन्य रोजगारों की ओर उन्मुख हो गया था सिर्फ 26 प्रतिशत परंपरागत रोजगार से जुड़ा रहा।'[1] 1955 के नेशनल सर्वे से उद्धृत करके आप बताते हैं कि 'घरेलू उद्योगों में लगी श्रमिकों की संख्या 10.2 करोड़ थी, पन्द्रह वर्ष पश्चात् इसमें हमारी जनसंख्या में 3.8 प्रतिशत अर्थात् 14 करोड़ की वृद्धि हुई, पर इसमें 38 प्रतिशत अथवा 6.35 करोड़ की कमी हुई।[2] इसका तात्पर्य यह है कि घरेलू उद्योगों की प्रगति अवरुद्ध हुई। फलतः देश में बेरोजगारी बढ़ी, गरीबी फैली। परिणामतः असामाजिक तत्वों का जोर बढ़ता गया। अर्थात् चोरों, डकैतों, फिरौती-वसूलकर्ताओं और सुपारी लेने वालों की संख्या बढ़ी।

इन दोनों उद्धरणों से संकेत यह मिलता है कि कांग्रेस-सरकार की गलत आर्थिक नीतियों के कारण, आम आदमी की गरीबी बढ़ी और उद्योगपतियों की पूंजी में विकास हुआ। इस तथ्य का समर्थन, इन आंकड़ों से होता है–'जहां तक आर्थिक वैषम्य का प्रश्न है, नेशनल काऊंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक्स रिसर्च की एक रिपोर्ट के अनुसार हमारी ग्रामीण जनसंख्या में निम्नतर स्तर के 20 प्रतिशत परिवारों की कुल सम्पत्ति 1976 में 1064 करोड़ रुपये के मूल्य की थी, दूसरे शब्दों में प्रति परिवार 700 रुपये। जबकि 1977 में 2727 और बिरला के घरानों में से प्रत्येक के पास 1070 करोड़ सम्पत्ति थी।'[3] हमारा आर्थिक-दर्शन में यह भी कहा गया है कि विश्व के इतिहास में ऐसा अन्य कोई उदाहरण मिल सकता है क्या।'[4] सच यह है कि ऐसा उदाहरण मिलना कठिन है। इसी पुस्तक में यह भी कहा गया है कि 'हमारे देश में लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो यह नहीं जानते कि वह अपने धन का क्या करें–यह धन प्रायः गलत तरीकों से अर्जित किया गया था–अतः वह एक दिन का पांच सितारा होटल के एक कमरे का किराया 2500 से 3000 रुपये तक दे रहे थे।'[5] जबकि देश के बड़े-बड़े शहरों में हजारों लोग हर मौसम में सड़क के फुटपाथों पर रात काटते हैं। इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए 'हमारा आर्थिक दर्शन' में कहा गया है–'आज हम दुनिया के सर्वाधिक दरिद्र, देश के हैं, 125 देशों की सूची में हमारा स्थान 123वां है। हमारी दो-तिहाई जनसंख्या रात को अधपेट बिस्तरों पर जाती है। करोड़ों व्यक्ति अधनंगे रहते हैं और प्रतिवर्ष सर्दियों में विशेष रूप से उत्तर-प्रदेश और बिहार में लाखों लोग कपड़े के अभाव में मर जाते हैं।'[6]

इसी संदर्भ में बताया गया है कि 1974 के आस-पास कलकत्ता में 33 प्रतिशत जनता गंदी बस्तियों में रहती थी। दिल्ली में ऐसे लोगों की संख्या 26 और कानपुर में 37 प्रतिशत थी।[7] स्वर्गीय चौधरी साहब के दल द्वारा प्रस्तुत

गरीब-अमीर के तुलनात्मक ये आंकड़े इस सच्चाई की ओर इशारा करते हैं कि कांग्रेस-सरकार बहुसंख्यक किसान तथा मजदूरों को गरीब बना रही थी और बड़े किसानों को नरम शर्तों पर ऋण दिलाये जा रहे थे।[8] यही नहीं, भू-स्वामियों द्वारा पट्टेदारों को हटाने का खुला अभियान भी चलाया गया था। यह सब भारत की जनता को, गरीबी के गहरे गड्ढे में डालने की योजना थी। किन्तु कांग्रेस के नेताओं को न तो यह षड्यंत्र नजर आता था, न देश में गरीबी, आमदनी तथा कुपोषण का अभाव और न भयंकर रोग की पीड़ा नजर आती थी। इसका प्रमाण है, 15 नवम्बर 1980 को, हरिओम आश्रम ट्रस्ट, नई दिल्ली के पुरस्कार वितरण समारोह में कहे गये ये शब्द–'मैं अपना अधिक समय देश में यात्रा करने में बिताती हूं। विशेष रूप से गत तीन वर्षों में जब मेरे पास कोई सवारी भी नहीं थी, मुझे कोई कुपोषण का उदाहरण नहीं मिला। वास्तव में बच्चे अधिक स्वस्थ दिखाई दिये, उनकी आंखें चमकीली थीं और वे अधिक अच्छे कपड़े पहने थे।'[9] अंग-रक्षकों और चाटुकारों से घिरे किसी व्यक्ति को, कभी जमीनी वास्तविकता दिखाई नहीं पड़ती। श्रीमती गांधी इसकी अपवाद न थीं। देश की वस्तुस्थिति, यथार्थ में उससे अलग थी, जो श्रीमती गांधी को दिखाई न दे सकी थी। इसका प्रमाण यह है कि 1979 में, 'विश्व बैंक एटलस' ने 178 देशों को आय के आधार पर, पांच भागों में बांटा था। इनमें अल्पतम आय वाले देशों में भारत को गिना जाता है।'[10] भारत की गणना, उन देशों में की गयी थी, जिनमें प्रतिमास प्रतिव्यक्ति आय 10 डालर से कम थी।[11] राष्ट्रीय पोषण-परिवेक्षण ब्यूरो द्वारा आयोजित आहार सम्बंधी राष्ट्रीय सर्वेक्षण से पता लगता है कि स्कूल-आयु से कम आयु वाले हमारे बच्चों में से 42 प्रतिशत बच्चे बहुत कम कैलोरी वाली आय पर निर्भर करते हैं।'[12] यही नहीं, सरकारी आंकड़ों के हिसाब से दूध की उपलब्धि भारत में 1951 में प्रति व्यक्ति 151 ग्राम थी, 1974 में वह घटकर 110 ग्राम रह गई थी।[13] जहां तक बच्चों के कुपोषण का प्रश्न है, भारत में सन् 1984 तक 45 प्रतिशत बच्चे भयंकर रूप से कुपोषण से पीड़ित थे।[14]

27 फरवरी 1975 में पूर्व स्वास्थ्य-मंत्री डा. कर्ण सिंह ने एक प्रश्न के उत्तर में बताया था कि 'विटामिन-ए' की कमी के कारण, हमारे देश में प्रतिवर्ष 14 से 15 हजार बच्चे अंधे हो जाते हैं।[15] इसी तरह 4 दिसम्बर 1980 को लोकसभा में राज्य-मंत्री (स्वास्थ्य) मूलचंद डागा ने बताया था कि भारत में अंधों की संख्या 90 लाख तक पहुंच गयी है।[16]

सन् 1984 से पूर्व यह भी कहा गया था कि हमारी जनसंख्या के 7 प्रतिशत अथवा 1.8 करोड़ लोग हृदय-रोग से पीड़ित रहते हैं।[17] उसी रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि 1990 में यह संख्या 2.6 करोड़ और 2000 में 3.8 करोड़ हो जायेगी।[18] यह कहना असंगत न होगा कि ऐसे रोगियों की संख्या घटने की अपेक्षा बढ़ी होगी, लेकिन जिस तरह भूखे, नंगे और कमजोर बच्चे श्रीमती गांधी को नजर नहीं आये थे, उसी तरह आज के नेताओं को रोगी, भूखे, बेकार तथा पीड़ित लोग नजर कैसे आते होंगे? यह तो सम्भव तभी हो सकता है, जब ये नेता वेष बदलकर रेलवे स्टेशनों, बस स्टैण्डों, शाम के समय फुटपाथों पर पैदल घूमें और आंखें खोलकर देखें।

लालबत्ती लगी गाड़ियों में अंगरक्षकों की भीड़ से घिरे और तेजी से भागते लोगों को जमीनी हकीकत कभी नजर नहीं आती। इसे देखने के लिए इरादा और जनता से सच्चा प्रेम होना चाहिए।

देश के संतुलित विकास में बाधक, अपनी नीतियों पर पर्दा डालने का प्रयास भारतीय नेता प्रायः करते रहे हैं। इसका एक उदाहरण चौधरी साहब ने श्रीमती गांधी के वक्तव्य से पेश किया है। 8 दिसम्बर 1972 को 'टाइम्स' पत्रिका को अपने साक्षात्कार में श्रीमती गांधी ने कहा था–'अमेरिका में दयनीय गरीबी के क्षेत्र हैं,[19] लेकिन उन्होंने यह बताने का कष्ट नहीं किया कि अमेरिका की प्रतिव्यक्ति मासिक आय भारत के व्यक्ति से कितनी अधिक हैं?

चौधरी साहब की मान्यता है कि गरीबी एक सापेक्ष शब्द है।[20] अमेरिका में जो गरीब है, वह भारत के गरीब की अपेक्षा बहुत मालदार है। इंग्लैण्ड के आंकड़े देकर आपने सिद्ध किया है कि वहां गरीब कहे जाने वाले लोगों के पास टी.बी., कपड़ा धोने की मशीनें आदि हैं, जबकि भारत में 3000 रुपये प्रतिवर्ष से कम आय वाले 73 प्रतिशत लोगों के घरों में से केवल 15 प्रतिशत लोगों के पास साइकिलें हैं।[21] देश के अभाव, पिछड़ेपन, रोग, शोक और पीड़ा को न देखकर हमारे नेताओं की नजर देश के चंद धनवान लोगों पर ही पड़ती थी और पड़ती भी क्यो नहीं, उनको पैसे भी तो धनवानों से मिलते थे। यही कारण है कि श्रीमती गांधी ने नारे तो गरीबी हटाओ के लगाये थे, लेकिन उनके शासनकाल में देश की अर्थव्यवस्था को धक्का लगा। 'जनसत्ता' जनवरी 28, 1984 के पृष्ठ 7 पर प्रकाशित आंकड़ों को उद्धृत करते हुए चौधरी साहब कहते हैं–'भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार 1982-83 में 81-82 तथा 80-81 की तुलना में राष्ट्रीय आमदनी कम बढ़ी।'[22] 1981-82 की समता में 82-83 में खरीफ की फसल

में खाद्यान्नों की पैदावार भी घटी। रवि की फसल में भी यही स्थिति रही।[23]

चौधरी साहब कांग्रेस-सरकार की जनसंख्या-नियंत्रण नीति की भी आलोचना करते हैं। वह मानते हैं कि इस क्षेत्र में नेहरू तथा श्रीमती गांधी की सरकारें विफल रही हैं। उनका मानना है कि 'जनसंख्या वृद्धि का दुष्परिणाम, अन्य देशों की अपेक्षा भारत को सबसे पहले भोगना पड़ेगा।'[24] यदि आज चौधरी साहब जीवित होते तो, उनको बड़ी ठेस लगती। वह इस नतीजे पर पहुंचते कि भाजपा सरकार भी जनसंख्या-नियंत्रण की दिशा में ठोस कदम उठाने में पूर्णतः विफल रही हैं। उनको विश्वास हो जाता कि ये नेता केवल वाक्-वीर हैं, कर्मवीर नहीं। ये और इनके रेडियो तथा दूरदर्श सिर्फ जनसंख्या-नियंत्रण का उपदेश देना जानते हैं, उसको रोकने का साहस और क्षमता उनमें नहीं है। वह वोट पाने के लालच में देश के ठोस निर्माण और नियंत्रण की दिशा में मजबूत कदम उठाने का साहस नहीं कर पाते। वे जानते हैं कि देश की आबादी का कौन-सा वर्ग बेतहाशा बच्चे पैदा कर रहा है, पर उसको कानून बनाकर रोकने का साहस उनमें नहीं है। यदि चौधरी साहब के हाथों में देश की सत्ता होती तो वह दो से अधिक बच्चे पैदा करने वाले परिवारों को ठीक रास्ते पर ला देते।

चौधरी साहब का विचार था कि 'शहरी भारत की अपेक्षा ग्रामीण भारत अधिक निर्णन है।'[25] खेद इस बात का है कि यह अन्तर लगातार बढ़ता रहा है। वैश्वीकरण अथवा मुक्त-विश्व-व्यापार की नीति से इस अन्तर को अधिक बढ़ने का मौका मिल रहा है। 'दैनिक जागरण' 2 मार्च 2001 के अंक में प्रकाशित डॉ. देवर्षि शर्मा के लेख के आधार पर कहा जा सकता है कि 'देश की 85 प्रतिशत आबादी आर्थिक सुधारों का बोझ ढो रही है।' एक अन्य सूचना के आधार पर उदारीकरण का रास्ता अपना कर, देश के बड़े-बड़े उद्योगपतियों को लाभ पहुंचाया जा रहा है। 22 घरानों का कारोबार जो 1951 में 312.63 करोड़ था, 1997 में बढ़कर 1,58004.72 करोड़ हो गया है।' दूसरी ओर, किसानों को आत्महत्याएं करनी पड़ रही हैं। आन्ध्र में 43 किसानों की आत्महत्याएं इसका प्रमाण हैं। देश के आर्थिक विकास के संतुलित स्वरूप का विचारशील व्यक्ति, इस अन्तर को स्वीकार नहीं कर सकता। समाज में एक वर्ग, जब भूख से मरता है अथवा भूखे पेट सोता है और दूसरा वर्ग असीम दौलत में दिन गुजारता है, तो समाज का समतामूलक तथा सहिष्णु परिवेश अशांति तथा असामाजिकता में परिणत हो जाता है। अस्तु, यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि हमारी सरकारें जाने-अनजाने असामाजिक तत्वों की संख्या बढ़ा रही है।

समाज की आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रगति के साथ गहराई से प्रतिद्ध चौधरी साहब, आर्थिक स्तर की विषमता के दुष्परिणामों को भली प्रकार समझते थे। वह एक प्रबुद्ध समाज-शास्त्री थे। साथ थी उनके चिंतन और कर्म में एकरूपता थी। यही कारण है कि उन्होंने बड़े-बड़े उद्योगों के उत्कर्ष का अनुमोदन किया था, दूसरी ओर लघु-उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति अपना कर अधिकांश व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर जुटाने की वकालत की थी। उनकी दृष्टि में कृषि-क्षेत्र में रोजगार के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध होने की सम्भावना रहती है। अतः वह कृषि-क्षेत्र के सर्वाधिक विकास के पक्षधर थे। उनका कहना है–'स्वतंत्रता के बाद, हमारी सबसे बड़ी कमी यही रही कि हमने देश की अर्थ-व्यवस्था के उत्कर्ष की दृष्टि से, कृषि के महत्त्व को नहीं समझा। हमारी इस मूल का हमारी जनता को भारी मूल्य चुकाना पड़ रहा है।'[26]

इसी बात पर बल देते हुए आपने कहा है–'15 अगस्त 1947 को देश का शासन पाने वाली राष्ट्रीय सरकार का यह दायित्व था कि अंग्रेजी सरकार द्वारा, भारत की जमीन पर, भारत-विरोधी किये गये कामों को मिटा देती, मसलन भारत के चौपट किये गये उद्योग-धंधों को फिर से जीवित करती, उसके विदेशी व्यापार को बढ़ावा देती, खेती की पैदावार को बढ़ाती, अंग्रेजों द्वारा नष्ट की गयी नैतिक परंपरा को पुनर्जीवित करती, राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान पाई जाने वाली धर्मनिरपेक्ष- राष्ट्रीय-एकता की भावना को बढ़ाती, दिनों-दिन गिरावट की ओर जाने वाले सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ाती और भारत को फिर से सोने की चिड़िया बनाती।'[27] खेद है कि सोने की चिड़िया बनाना तो दूर, व्यक्तिगत स्वार्थ, दलगत संकीर्णता, धार्मिक आडम्बर और विदेशी आर्थिक दासता के मोहजाल में फंस कर उसे आर्थिक-शोषण के कारागार में डाल दिया है। राष्ट्रीय सरकार के अराष्ट्रीय कार्यों पर प्रकाश डालते हुए आप कहते हैं–'यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत को राजनीतिक सत्ता सौंपते समय अंग्रेज, रिजर्व बैंक में 1.180 करोड़ के सिक्के, सोना तथा अन्य कीमती वस्तुएं छोड़ कर गये थे। उस समय भारत को इंग्लैण्ड द्वारा 1,733 करोड़ मिलने थे और युद्ध-पूर्व ऋण के भुगतान में 425 करोड़ रुपये की धनराशि और मिलनी थी। इस प्रकार कुल मिलाकर 3.453 करोड़ रुपये की धनराशि हमारे कोश में मौजूद थी। 1951 तक जमा रकम को खर्च करके भारत 32 करोड़ रुपये का कर्जदार बन गया।[28] आगे चलकर तो स्थिति यहां तक बिगड़ी कि समाजवादी नेता चन्द्रशेखर के प्रधानमंत्री काल में, रिजर्व-बैंक का सोना तक गिरवी रखा गया था। यह सब कांग्रेस-शासन के

तीन दशकों के बौद्धिक दिवालियापन से भरे एवं वैयक्तिक हितपरक कार्यों का परिणाम था कि देश कर्जदार बनने की स्थिति तक पहुंच गया।

लेकिन वर्तमान सरकारों के कार्यकलापों, फिजूलखर्ची तथा शान-शौकत को देखकर लगता है कि कर्जदार बने रहने की भारत की नियति बन गयी है। ये नेता, यह नहीं समझते कि कर्ज पर ली गयी रकम से न तो कभी घर का निर्माण होता है, न राष्ट्र का। कर्जदार की अधिकांश आमदनी कर्ज का ब्याज चुकाने में चली जाती है और विकास के लिए धन नहीं बचता। लेकिन प्रदेशों तथा केन्द्र के मंत्रियों के विदेश-दर्शन के मोह, शोर मचाती लाल बत्ती की शान, व्यक्तिगत सुरक्षा के लालच और सम्पत्ति-अर्जित करने के आकर्षण ने देश को कर्जदार ही नहीं बनाया, वरन् विकास की ओर से उसका मुंह मोड़ दिया है। उत्तर-प्रदेश राज्य इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। इस राज्य में वर्ष 2000-2001 में मंत्रियों का जेब खर्च 26.64 करोड़ था[29] और 2001-2002 का बजट अनुमान 25.15 करोड़ है,[30] जिसके बढ़ने की संभावना अधिक है, घटने की नहीं। जहां तक राज्य में विकास एवं व्यवस्था का प्रश्न है, उसका स्तर शून्य तक पहुंचने की प्रक्रिया में है। न तो लोगों को समुचित मात्रा में बिजली मिलती है, न किसानों को समय पर सिंचाई के लिए पानी और न समय पर जीवन-रक्षा के लिए किसी प्रकार की सहायता। इस सबसे ऊपर भ्रष्टाचार की मात्रा है। सरकारी दफ्तरों में कोई कार्य रिश्वत दिये बिना नहीं बनता। इतने पर भी मंत्रियों की शान आकाश को छू रही है। इस सबके विपरीत रास्ता चौधरी साहब का था। वह जून के महीने में, विधान-सभा-भवन के अपने कक्ष में बैठकर काम करते थे। विदेश जाना तो दूर की बात थी, वह मसूरी या शिमला भी हवा खाने नहीं गये। जहां तक, प्रशासनिक ईमानदारी का प्रश्न है, उनके विभाग के अधिकारी ही नहीं, दूसरे विभागों के लोग भी उनसे डरते रहते थे। यह उनकी लोकनिष्ठा, प्रशासनिक कौशल और व्यक्तिगत ईमानदारी का प्रभाव था। यदि, आज के नेताओं को देश को सबल, समाज को समृद्ध और भारतीय संस्कृति को सार्थक बनाना है, तो उनको चौधरी साहब का रास्ता अपनाना ही होगा। आज कांग्रेसी-नेता भी किसान रैलियां कर रहे हैं, किसानों की समृद्धि का नारा लगाकर पुराने कुछ प्रधानमंत्री भी वैतरणी पार उतरने की योजना में संलग्न है और उद्योगपतियों का पेट भरने वाली सरकारों के नेता भी किसान का राग अलाप रहे हैं, लेकिन किसान जानता है कि ये लोग, असल में उसके हितैषी नहीं हैं, ये तो सुविधाओं के सब्जबाग दिखाकर उसकी वोट बटोरने के लिए प्रयास कर रहे हैं।

किसान को चौधरी साहब द्वारा लिखा गया साहित्य, यह भली प्रकार बता चुका है कि किसान के हितों की बातें करने वाली इन सरकारों के दावे खोखले हैं। ये किसानों से केवल वोट लेती हैं और सत्ता में आने के बाद, कानून बनाकर, जमीनें किसानों से छीनकर, बड़े-बड़े फार्म बनाने के उत्सुक लोगों को देती है। इसका प्रमाण है–'सातवें दशक तक आते-आते इस देश में खेतिहरों की संख्या 51.10 से घटकर 43.34 प्रतिशत आ गयी थी। इसका सीधा-सा मतलब यह है कि किसानों से जमीन छीन ली गयी और वे खेती पर मजदूरी करने के लिए मजबूर हो गये। दूसरी ओर 90 हेक्टेयर से अधिक रकबा वाले फार्म 1961-62 में 23 लाख थे, वे 1970-71 में 28 लाख हो गये।'[31] इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि कांग्रेस-सरकार किसानों की हितैषी न थी, वह हितैषी थी बड़े-बड़े फार्म मालिकों की अथवा अधिक पैसे वाले वर्ग की। राजनीतिक स्तर पर, कांग्रेस की विरोधी होते हुए भी परवर्ती सरकार/सरकारों ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया है, जिससे किसानों का हित होता हो, हां रैलियां करके अथवा टी. वी. पर आकर उनके प्रतिनिधि किसान-हित का राग अवश्य अलापते रहते हैं। यदि यथार्थ में, ये सरकारें देश की बहुत बड़ी जनसंख्या वाले किसान-वर्ग का हित चाहती हैं तो पहला काम यह करें कि किसी भी देश तथा विदेशी कम्पनी के लिए, कृषियोग्य भूमि का, अधिग्रहण न करें, दूसरे समय पर किसानों को पानी, खाद, उन्नत किस्म के बीज दिलायें, तीसरे सरकारी दफ्तरों में होने वाले किसानों के शोषण को समाप्त कर दें, चौथे कृषि-उत्पादों का आयात न करके निर्यात करने का मार्ग अपनायें और पांचवें ग्रामीण क्षेत्रों में हुई शिक्षा-प्रणाली के विनाश की प्रक्रिया को रोक दें।

किसान की मूल समस्या थी, भू-स्वामी जमींदारों का शोषण। इसका अंत स्वयं चौधरी साहब ने, जमींदारी-प्रथा का अन्त करके कर दिया था। इसके आगे, किसान के सामने कौन-सी समस्याएं हैं उनकी ओर इशारे करते आप कहते हैं–'लेकिन चकबंदी न तो भूमि का रकबा बढ़ा सकती है और न सीमान्त अथवा अलाभकारी जोतों की समस्याओं को हल कर सकती है। इन समस्याओं का समाधान केवल सेवा-सहकारी-समितियों के जरिये हो सकता है।'[32] सेवा-सहकारी समितियों की सार्थकता एवं सफलता के विषय में, आपकी मान्यता है–'सहकारी समितियों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उनका गठन लोगों की उत्कट इच्छा के फलस्वरूप किया गया हो, उनसे लोगों की आम आवश्यकताओं के सहज हल निकलते हों, उनको कृषि-संबंधी तकनीकी ज्ञान कराने का वे माध्यम

बनती हों, बाजार में होने वाले शोषण से किसानों को बचाती हों, फसल के मौसम में उनकी पैदावार के उचित मूल्य दिलाने की व्यवस्था करती हों, आवश्यकता के समय किसानों को अग्रिम मूल्य चुकाने में समर्थ हों और इन समितियों के गठन को सफल बनाने की मानसिकता लोगों में पैदा करती हों अर्थात् लोकतंत्र के निर्माण की दिशा में ये समितियां महत्त्वपूर्ण योग दे सकती हैं।'[33]

लेकिन प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या सरकार/सरकारें पूरी ईमानदारी, लोकहित के प्रति आस्था और राष्ट्रीय भावना के साथ, ऐसी सेवा-सहकारी समितियों के गठन के लिए वातावरण पैदा करने की स्थिति में हैं? इस प्रश्न का सीधा-सा उत्तर यह है कि नहीं। इस उत्तर के मूल में निहित सच्चाई से, समूचे शासन के औचित्य पर प्रश्न-चिन्ह लग जाता है। चुनाव-आयोग के सदस्य, डा. जी. बी. कृष्णामूर्ति द्वारा चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय के सभागार में कहे गए शब्द इस ओर संकेत करते हैं। आपने कहा था—'जिन्हें जेल में होना चाहिए था, वे संसद में हैं।'[34] जिस देश की विधायिकाएं भ्रष्ट तथा असामाजिक तत्वों से भरी होंगी, उस देश को केवल परमात्मा ही बचा सकता है। जिस प्रदेश सरकार के पास, समय पर वेतन देने तक के लिए धन नहीं है, उसके मंत्री लाखों की चाय पी जाते हों, यह कितनी विषम स्थिति है? उत्तर-प्रदेश के मंत्रियों ने वर्ष 2000 में 88 लाख रुपये की चाय पी डाली,[35] जबकि विश्व-बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 1980 में 30 करोड़ गरीब थे और 1987 में 34 करोड़।[36] निश्चय ही 2000 में यह संख्या 40 करोड़ को पार कर गयी होगी। जिस देश की लगभग आधी आबादी को, दोनों वक्त, भरपेट भोजन न मिलता हो, उस देश के एक बड़े प्रदेश के मंत्री लोग 88 लाख की चाय पी जाते हों और वर्ष 2000-2001 में 26.44 करोड़ रुपये जेब खर्च ले लेते हों, उस देश का उद्धार कैसे होगा? ऐसे लोगों को, डा. हो. ची. मिन्ह तथा चौधरी साहब की जीवनी पढ़ाई जानी चाहिए, ताकि उनमें अपने व्यक्ति-हितों से ऊपर उठकर समाज तथा राष्ट्र-निर्माण की भावना पैदा हो जाये।

राष्ट्र के संतुलित विकास और समाज के सांस्कृतिक एवं समतामूलक उत्कर्ष के लिए भारतीयों के मन में दायित्वबोध, सांस्कृतिक विरासत के प्रति लगाव और उत्कट देशभक्ति की भावना का उदय होना नितांत आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। लेकिन ऐसी स्थिति में जब समूचा देश घोटालों के वातावरण, रिश्वत के माहौल, राजनीति एवं प्रशासन के बीच नापाक गठबंधन और बलवती स्वार्थों के तूफान के भंवर में फंसा हो तो कैसे संभव हो सकेगा? लेकिन नैतिक

मूल्यों के ह्रास, लोकतांत्रिक मूल्यों के पराभव और राष्ट्रीय दायित्वों की उपेक्षा के अंधकार के पीछे भी प्रकाश की किरणें छिपी हुई है। ये किरणें कभी महामहिम राष्ट्रपति के शब्दों से फूट पड़ती है, कभी सर्वोच्च न्यायालय के माननीय प्रधान न्यायाधीश की वाणी से निकल पड़ती है और कभी सतर्कता आयोग के अध्यक्ष एन. विट्ठल की आवाज में बाहर आ जाती है। देश में बढ़ते 'काले धन को भ्रष्टाचार का आक्सीजन बताते हुए एन. विट्ठल ने कहा था—'हमारे प्रजातंत्र की जड़ें भ्रष्टाचार में हैं क्योंकि राजनीतिक दल अपने कोष के लिए नकद धन लेते हैं।'[37] लोगों का विश्वास बन गया है कि नेता और प्रशासनिक अधिकारियों की मिली भगत भ्रष्टाचार की जड़ है और भ्रष्टाचार राष्ट्रीयता के लिए खतरा बन गया है और यह खतरा एड्स से भी ज्याद गम्भीर है। लेकिन हमारे देश के भाग्यविधाता क्या इस खतरे को देख पा रहे हैं? यदि नहीं तो उनके समस्त कार्य-कलाप किस सीमा तक अंतर्राष्ट्रीय हैं? यह समझना प्रत्येक देशभक्त का पहला कर्तव्य है। चौधरी साहिब का यह प्रमुख गुण था कि उन्होंने ऐसे लोगों को उजागर किया है। यह माना हुआ सिद्धांत है कि जिससे धन लिया जाता है, उसका प्रभाव भी स्वतः आ जाता है। गलत तरीकों से कमाया गया पैसा, जब राजनीतिक नेताओं के पास पहुंचता है तो उनका विवेक समाप्त हो जाता है, भले-बुरे की पहचान करने वाली उनकी आत्मा मर जाती है और तब वे लोक-रक्षक न रहकर, केवल अपने पारिवारिक हितों के रक्षक बन जाते हैं। चौधरी साहब, इस सिद्धांत को भली प्रकार जानते थे। अतः उन्होंने कालाबाजारी के चोरों को अपने पास कभी न आने दिया। अपने चुनाव खर्च के लिए, उनको पैसा मिला था, प्रदेश के उन किसानों से जिनको उन्होंने भू-स्वामियों के अर्थिक शोषण से मुक्त किया था। यही कारण है कि वह कालाबाजारी के माफियाओं के प्रभाव में कमी नहीं आये। खेद है कि इस प्रभाव से न कांग्रेस बच पाई, न बाद की सरकारें। यही कारण है कि कांग्रेस-सत्ता से बाहर हो गई और परवर्ती सरकारें विभिन्न काण्डों की शिकार। चौधरी साहब के बहुत समीप वाले एक सज्जन, डा. भगवान सिंह ने मुझे बताया था कि देश के एक बड़े उद्योगपति ने, चौधरी साहब को, उनके चुनाव-फण्ड में, दस लाख रुपये देने का वचन, किसी के माध्यम से उन तक इस शर्त पर पहुंचाया था कि वह (चौधरी साहब) उसके चुनाव-क्षेत्र में अपनी चुनाव-सभा न करें। लेकिन सच यह है कि चौधरी साहब ने, उसके क्षेत्र में अपनी चुनाव-सभाएं कीं और उसको लोकसभा के चुनाव में हराया भी और उसका प्रस्ताव बड़ी सख्ती से अस्वीकार किया था। वह अन्य

लोगों की तरह भानुमती का कुनबा जोड़कर सत्ता में बने रह सकते थे, पर जनता का हित नहीं कर पाते। ऐसी सत्ता उनको स्वीकार न थी। वह सत्ता को राष्ट्र और समाज को समृद्ध बनाने का साधन मानते थे, आजकल के नेताओं के समान वैभव-भोग का माध्यम नहीं। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि 'सत्ता के मोह से अपने आप को दूर रखना, जहां अपने में एक बहुत बड़ी बात है, वहां सत्ता में रहते हुए अपने को ईमानदार तथा बेदाग बनाये रखना कम महत्त्वपूर्ण नहीं।'[38]

यथार्थ में सत्ता में रहते हुए भी बेदाग बने रहना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है। सच्चे अर्थों में यही तप है। सत्ता पाकर बड़े-बड़े तपस्वी महात्माओं को लुड़कते देखा गया है। इस स्थिति में तुलसी का यह कथना 'सत्तापाहि काहि मद नाहीं' सोलह आना सही साबित होता है। एक अंग्रेजी के कवि का कथन 'नोबल एण्ड वरच्युअस माइन्ड मेरिकायल इन इम्पीरियल चार्ज' आज के अधिकांश नेताओं के संदर्भ में सार्थक अवगत होता है। ये नेता न तो समुद्रगुप्त की तरह जनता के हितों की रक्षा करने वाले हैं, न विक्रमादित्य की तरह वेश-बदल कर जनता की परेशानियों का जायजा लेने वाले हैं। इनमें से किसी के सूत्र अन्डरवर्ड डॉनों से जुड़े होते हैं, किसी के माफियाओं के साथ और किसी के दलालों के साथ। जिस तरह आजाद भगत सिंह, सरदार पटेल, जयप्रकाश नारायण, लालबहादुर शास्त्री बेदाग अपना काम पूरा कर गये थे, उसी तरह उनकी लोकहितकारी विरासत का सफलतापूर्वक निर्वाह चौधरी साहब ने किया है। कबीर के अनुसार जिस तरह 'अपनी काया रूपी चुंदरी को ज्यों-का-त्यों धर दिया था', उसी प्रकार चौधरी साहब भी, परोक्ष सत्ता द्वारा दी गयी शरीर रूपी चाद को ज्यों की त्यों, बेदाग छोड़कर चले गये। उनके लम्बे राजनीतिक जीवन में, कभी इस बात का आरोप, उन पर न लगा कि उनकी चादर में किसी प्रकार का कोई दाग है। प्रदेश में मंत्री रहते हुए आपने कई बार अनेक कठोर निर्णय लिये थे और कई बार संवेदनशील तथा सहानुभूतिपूर्ण, लेकिन प्रत्येक के मूल में भावना जनहित और देशकल्याण की थी। यही कारण है कि उनको योग्य एवं कठोर प्रशासक, लोकप्रिय मंत्री, बहुसंख्यक जनता का अप्रतिम संरक्षक, भ्रष्टाचारी मनोवृत्ति का दुश्मन, अनुशासनहीनता का कट्टर विरोधी, प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप के प्रति असहिष्णु और सरकारी खर्चों में कटौती का प्रबल पक्षधर माना गया है। उनकी न्यायप्रियता, अनुशासन बनाए रखने की कामना संदंधी एक संस्मरण प्रस्तुत है। एक बार मैं और मेरे एक साथी कार द्वारा आगरा से फीरोजाबाद जा रहे थे,

समय था लगभग सात बजे प्रातः जब हम ऐत्मातपुर में प्रवेश करने वाले थे ही कि एक रेस्तरां को देखकर चाय पीने रुक गए थे। उसी समय तीन व्यक्ति और आ गए। ये तीनों देश-व्यापी छात्र-आन्दोलन की समस्या पर चिंतित थे और बहस में लगे थे। एक का सवाल था, आखिर इसका इलाज क्या है? दूसरे का उत्तर था–'इसका इलाज है चरणसिंह।' इसका अर्थ है कि चौधरी साहब का नाम अनुशासन और व्यवस्था का प्रतीक बन गया था।

चौधरी साहब की आर्थिक नीति का मूल स्वर है, देश से गरीबी मिटाना, हर व्यक्ति को काम दिलाना ताकि वह अपने परिवार का पालन कर से और देश-शोषक समाज को, शोषण के अयोग्य बना सके। यथार्थ में, वह यह मानते थे कि जब देश से बेकारी, गरीबी, अशिक्षा और रहने के लिए घर की कमी दूर हो जायेगी तो देश से लूट-मार, चोरी-डकैती तथा अनुशासनहीनता कम हो जायेगी। इस उद्देश्य अर्थात् समाज के एक बड़े वर्ग को खुशहाल बनाने के लिए वह लघु उद्योगों के विकास पर बल देते थे। वह भारी उद्योगों के विरोधी न थे, पर मानते थे कि भारी उद्योगों का विकास राष्ट्रीय पूंजी के आधार पर नहीं किया जा सकता, क्योंकि अभी देश के पास उसका अभाव है। अतः उनकी मान्यता है कि लघु-उद्योगों से ही देश को सम्पन्न बनाया जा सकता है। 'भारी उद्योगों के विकास के विरोध में, उनका अत्यंत सबल तर्क था कि 'भारत की विशाल जनसंख्या के लिए भारी उद्योगों में रोजगार की गुंजाइश नहीं है।'[39] आज हम देखते हैं कि देश में भारी उद्योगों की बाढ़ आ गयी है। वर्तमान सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को भी, निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया है, फिर भी रोजगार के अवसर लेशमात्र भी नहीं बढ़े हैं। आर्थिक दृष्टि से देश और उसकी जनता को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनका विचार था–'अपने ही साधनों की ताकत से धैर्यपूर्वक राष्ट्र का नीचे से क्रमिक विकास।'[40]

देश को स्वाधीन हुए आधी सदी से अधिक समय गुजर गया है, फिर भी हमारी गणना, दुनिया के गरीब देशों में होती है। हम अपने विकास के साधनों के लिए या तो विश्व-बैंक की ओर ताकते हैं अथवा अमेरिका तथा अन्य समृद्ध देशों की ओर। हमारी गरीबी तथा साधनहीनता का स्पष्ट कारण समय-समय पर आने वाली सरकारों की गलत आर्थिक नीतियां हैं।

लोकदल की आर्थिक नीति, देश के प्रशासनिक ढांचे को भी समुचित विकास के अभाव और गरीबी के लिए उत्तरदायी मानती है। उसकी मान्यता है कि 'भारत गांवों में बसता है, शहरों में जन्म लेने वाले बुद्धिजीवी-राजनीतिक प्रशासनिक

तंत्र पर छाये हुए हैं। उन्हें ग्रामीण-समस्याओं की जरूरतों, कमजोरियों, आकांक्षाओं और ग्रामीण मनोविज्ञान की कोई समझ नहीं है।'[41] अतः यह वर्ग नासमझी अथवा अपने दुराग्रह के कारण, ऐसी नीतियों को आगे बढ़ा देता है, जिससे देश की गरीबी तथा प्रशासनिक असंगतियां दूर होने की अपेक्षा अधिक बढ़ जाती हैं। इसका एक स्पष्ट उदाहरण वर्तमान सरकार के काल में देखा जा सकता है। देश में चीनी का पर्याप्त भण्डार होने की स्थिति में भी पाकिस्तान से चीनी आयात की गयी और अन्य देशों से गेहूं। विदेशी ताकतों के प्रभाव से, निर्यात की अपेक्षा आयात की नीति अपनाई गयी। अतः भण्डारन की समस्या उत्पन्न हुई। विदेशी प्रभाव का यह दुष्परिणाम सामने आया, यदि अपने संसाधनों से विकास की नीति अपनाई गयी होती तो न तो भण्डारण की समस्या उत्पन्न हुई होती न विदेशी दबाव सहना पड़ता। अपने संसाधनों से विकास तथा कुशल एवं ईमानदार प्रशासन का परिणाम है कि चीन हमसे बाद में स्वाधीन हुआ, पर हमसे अधिक विकसित और समर्थ है। हमारे राजनीतिक नेता न तो देश को ईमानदार प्रशासन-तंत्र ही दे पाये हैं और न स्वतंत्र नीति। वे देश की प्रगति के मूल साधनों का स्वतंत्र विकास करने में भी विफल रहे। उन पर ब्रिटिश नीति का भी प्रभाव था और सोवियत-संघ की सहकारिता वाली कृषि-नीति का भी। उन्होंने भारत के अतीत में झांकने की कोशिश की होती तो वे ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा नष्ट की गयी उद्योग-नीति को पुनर्जीवित करने की बात सोचते। एक समय था कि देश में उत्पन्न सामान को, व्यापारिक सार्थवाह, मध्य-एशिया तथा योरोप तक ले जाते थे और उसको बेच कर स्वर्ण इस देश में लाते थे। इसके विपरीत हमारे नेताओं ने, न तो देशी लघु-उद्योगों के विकास पर ध्यान दिया, न कृषि के समुचित विकास पर और न रोजगारपरक धंधों के उत्कर्ष पर। चौधरी साहब की आर्थिक-नीति, गांधीजी की नीति से अधिक मेल खाती है। वह एक ओर स्वदेशी का समर्थन करती है, दूसरी ओर लघुउद्योगों के विकास को महत्त्व देती है। लघु-उद्योग और बड़े-उद्योगों की प्रतिद्वंद्विता को दूर रखने के लिए, वह इस बात का प्रचार करती है कि जिन वस्तुओं का उत्पादन लघु-उद्योगों में हो, उनका उत्पादन बड़े-उद्योगों से नहीं किया जायेगा। इस नीति के अन्तर्गत बड़े-उद्योग रेल के इंजिन, मोटर, ट्रैक्टर, कार, बड़ी मशीन, रोड-रोलर आदि का उत्पादन करते और लघु-उद्योग आम आदमी के उपयोग की वस्तुओं का, तो बिना किसी प्रतिद्वंद्विता के आवश्यकता की समस्त चीजें देश में मिलतीं और रोजगार भी उपलब्ध होते। इस प्रकार के विकास में समय तो लगता, पर देश

चीन तथा जापान की भांति, शक्तिशाली बनकर उभरता। लेकिन राजनीतिक नेताओं ने न तो आत्मनिर्भरता की ओर ध्यान दिया और न प्रशासन-तंत्र की ईमानदारी पर गौर किया। इसका फल यह निकला है कि सरकार विविध विकास योजनाओं के लिए जो धन-राशि आवंटित करती है, उसका सत्तर प्रतिशत भाग प्रशासन-तंत्र की जेब में चला जाता है और शेष राशि से जो कार्य होता है, वह बहुत घटिया किस्म का।

चौधरी साहब भारत को एक गरीब देश मानते थे। उनकी दृष्टि में, 'गरीबी का अर्थ है उन चीजों का अभाव, जिनसे जिन्दा रहने के लिए मनुष्य की आवश्यकताएं पूरी होती हैं--'चाहे ये चीजें खेतों में पैदा होती हों या दूसरे क्षेत्रों में तैयार हों। इन सभी चीजों का मूल-स्तोत्र भूमि है।'[42] भूमि को सभी चीजों का मूल-स्तोत्र मानने वाले, चौधरी साहब ने भूमि को चंद जमींदारों, ताल्लुकेदारों और बड़े-बड़े फार्म के मालिकों से मुक्त कराया। इस मुक्ति के दो कारण थे—पहला ये लोग भूमि का समुचित उपयोग करने में असमर्थ थे और दूसरा जो किसान भूमि का प्रयोग कर सकता था, वह सामंत, जमींदार एवं ताल्लुकेदारों से पट्टे पर जमीन लेकर करता था, पर पूरी तरह से नहीं। अतः भूमि का समुचित प्रयोग हो, इसीलिए जमींदारी-उन्मूलन-कानून आपने पास कराया था। यही नहीं, उत्तर प्रदेश सरकार की उस योजना को विफल कराने का श्रेय भी चौधरी साहब को है, जिसके अन्तर्गत किसानों को बेदखल करके, बड़े फार्म स्थापित करने की योजना के साथ वह सहमत थी और प्रयत्नरत भी।

एक स्थान पर आप यह भी बताते हैं कि 1925 तक भारत खाद्यान्नों का निर्यात करता था, किन्तु 1943 के बाद आयात करने लगा और उसको प्रतिवर्ष 207-8 करोड़ खाद्यान्नों के आयात पर खर्च करने पड़ते थे।[43] उनकी दृष्टि में, करोड़ों लोग ऐसे थे, जिनके पास जमीनें तो थी, पर उनका समुचित प्रयोग न होता था। आपकी दृष्टि में 'कृषि का अर्थ था भूमि का उपयोग व प्रयोग'। आपकी धारणा थी कि औद्योगिक विकास भी तभी हो सकता है, जब कृषि में समृद्धि हो या बहुत हुआ तो दोनों साथ-साथ हो सकते हैं।[44]

चौधरी साहब की मान्यता कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसका प्रमाण आज मिल रहा है। वर्तमान सरकार देशी-विदेशी उद्योगों को हर प्रकार की सुविधा देकर विकसित करने पर लगी है, पर कृषि की ओर से उदासीन है। वह कृषि-विकास के नारे तो लगाती है, लेकिन ठोस कदम नहीं उठा पाती। वह कागजों पर जो योजना बनाती है, उसे उसका प्रशासन-तंत्र लागू करने में सफल नहीं होता।

यही कारण है कि केन्द्र की वर्तमान सरकार ने भी चीनी तथा गेहूं का आयात किया। सन् 2000 की विज्ञान-कांग्रेस में डा. स्वामीनाथन जैसे कृषि-विशेषज्ञों ने देश को समर्थ तथा शक्तिशाली बनाने के लिए कृषि का समुचित विकास करने पर बल दिया है।

चौधरी साहब का कृषि विषयक दृष्टिकोण बड़ा सटीक, तर्कसंगत और राष्ट्रहित से भरा हुआ है। बड़े फार्मों के विषय में उनकी मान्यता है–'बड़े फार्मों के प्रबंध में अपव्यय होता है और किराये के मजदूरों की देखभाल करना मुश्किल होता है, जिसकी वजह से बड़ी मशीनों का प्रयोग होने लगता है और बड़ी मशीनें मजदूरों का स्थान ले लेती हैं।'[45] फलतः देश में बेकारी बढ़ने लगती है। अतः वह छोटी जोतों के पक्षधर थे। उन पर काम करने वाले आदमियों की संख्या बढ़ती है। काम भी लगन के साथ होता है। इससे उत्पादन बढ़ता है और गरीबी कम होती है। जो लोग बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा कृषि-उत्पादन बढ़ाने के पक्षधर थे या आज भी हैं, उनके लिए चौधरी साहब का कहना है–'यदि बड़ी-बड़ी मशीनों से ही उत्पादन बढ़ता होता तो अमेरिका व सोवियत संघ में, जहां फार्मों पर बड़ी-बड़ी मशीनों से ही काम होता है, प्रति एकड़ उत्पादन पश्चिमी योरोप व जापान से, जहां उनकी अपेक्षा बहुत कम मशीनों का इस्तेमाल होता है, कम न होता।'[46] मशीनीकृत बड़े फार्मों पर, उत्पादन दर, छोटी जोत के अनुपात में, कम तो थी ही, दूसरे लोगों को रोजगारोन्मुख काम भी कम मिलता था। यही कारण था कि बहुसंख्यक समाज के हितों के साथ प्रतिबद्ध चौधरी साहब सहकारी खेती तथा बड़ी मशीनों के प्रयोग के विरुद्ध थे। इसका विशेष कारण यह है कि उनको किसान और खेती की हर स्थिति का गहरा ज्ञान था, जिसका अभाव पं. नेहरू, श्रीमती गांधी और कुछ अन्यों को न था।

उनका मत यह भी था–'भूमि बर्बाद होने वाली चीज नहीं है। इसलिए जो लोग उस पर मेहनत करते हैं, उनमें सुरक्षा की भावना बढ़ती है। इस प्रकार की सुरक्षा की भावना और किसी रोजगार में नहीं है।'[47] इसका तात्पर्य यह हुआ कि चौधरी साहब देश के 46.36 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व रखने वाले और 21.05 प्रतिशत खेतिहर मजदूरों अर्थात् कुल 57.4 प्रतिशत लोगों के पक्षधर थे। साथ ही, इनको देश की गरीबी दूर करने वाला वर्ग भी मानते थे। इतने पर भी, कृषि-क्षेत्र में पूंजी न लगाने पर, आपने सरकार की आलोचना करते हुए लिखा–'भारत सरकार बराबर खेती को प्राथमिकता देने की बात कहती आयी है और उत्पादन के लक्ष्य भी बहुत ऊंचे निर्धारित करती आयी है। लेकिन हमारी

योजनाओं में कृषि के लिए बहुत कम सार्वजनिक परिव्यय की व्यवस्था की जाती रही है।'[48]

अल्प मात्रा में जो व्यवस्था होती है, वह प्रशासनिक शिथिलता और भ्रष्टाचार के कारण उचित हाथों तक नहीं पहुंच पाती। कांग्रेस-दल की सरकार के लिए यह कथन जितना सही है, उतना ही सही आज के शासन के लिए भी है। यह सरकार किसान तथा खेती के उत्कर्ष का नारा तो लगाती है, पर न तो किसानों को बिजली मिलती है, न नहरें साफ होती हैं, न उचित मूल्य पर उर्वरक मिलते हैं और न बीज। इसके अलावा डीजल की कीमतें, वर्ष में दो-दो बार बढ़ जाती है और कृषि-उत्पादों का, लागत के अनुपात में, मूल्य भी नहीं मिल पाता। ऐसी हालात में कृषि का उत्कर्ष क्या केवल आश्वासनों तथा प्रस्तावों से होगा? इससे संकेत यही जाता है कि सरकार केवल उद्योगपतियों तथा मिल मालिकों का ही पोषण करना चाहती है।

यदि सरकार वास्तव में कृषि और बहुसंख्यक जनता का भला करना चाहती है तो, उसे चौधरी साहब के इन विचारों को कार्यरूप में परिणत करना चाहिए था। चौधरी साहब का विचार है—'सारे देश को खाद्यान्न के लिए एक ही क्षेत्र मान लिया जाए।'[49] देखने में यह आता है कि उत्तर-प्रदेश का किसान अपना गुड़ तथा गेहूं, जम्मू का किसान बासमती चावल, हरियाणा तथा पंजाब का चावल तथा गुड़ और आन्ध्र का तम्बाकू को दूसरे प्रदेशों को निर्यात नहीं कर सकता, लेकिन स्कूटर, मोटर साइकिलें, साइकिलें, पेस्ट, पाउडर आदि अनेक औद्योगिक उत्पादों को धड़ाके के साथ, देश के एक कोने से दूसरे तक भेजा जाता रहा है। सरकार की यह नीति निश्चय ही खेती और किसान-विरोधी है। अतः चौधरी साहब, उसका विरोध करते हैं। उनका दूसरा सुझाव कृषि-उत्पादों के मूल्य-निर्धारण से सम्बंधित है। उसके मतानुसार 'किसी एक वर्ष को आधार वर्ष मानकर, उस वर्ष में खेतिहर अपने उत्पाद की जो कीमत पाता है और उस सामान की कीमत को लेकर, जो वह खरीदता है, दोनों का अनुपात निकाला जाए और उस अनुपात से नापा जाए कि किसी वस्तु की कीमत, उपभोक्ता अथवा उत्पादन के लिए उचित है अथवा अनुचित? इस तरह निर्धारित दर को समता-कीमत माना जाए।'[50]

यदि सरकारें, इस 'समता कीमत' को निश्चित कर देतीं और उसको सच्चे अर्थ में लागू कर देतीं हैं, तभी वे कृषि तथा किसान के उत्कर्ष में रुचि रखने वाली मानी जा सकती हैं अन्यथा उनको देश की बहुसंख्यक जनता का विरोधी माना जाना चाहिए।

चौधरी साहब ने बड़े विस्तार तथा तथ्यों के साथ, सरकार द्वारा गांव व खेती की उपेक्षा के कारणों पर प्रकाश डाला है,[51] महात्मा गांधी तथा पं. नेहरू की औद्योगिक नीति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए, आपने देश के लिए लाभकारी औद्योगिक संरचना पर विचार किया है, समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्विरोधों को प्रकट किया है[52] और विदेशी ऋण तथा सहयोग के बल पर राष्ट्रीय विकास की अल्प सम्भावना का प्रतिपादन किया है।[53] यही नहीं, आपने विस्तारपूर्वक यह बताया है कि सन् 1971 के लोकसभा-चुनाव के समय जारी घोषणा-पत्र में कांग्रेस ने वायदा किया था कि वह आर्थिक सत्ता व सम्पत्ति का कुछ हाथों में केन्द्रीयकरण रोकेगी'[54], किन्तु वह ऐसा करने में पूर्णतः असफल रही। यदि वह ऐसा कर पाती तो देश की गरीबी दूर होती और वह शक्तिशाली बनता। कांग्रेस-विरोधी केन्द्र की सरकार भी ऐसा करने की नीति नहीं रखती। वह सैद्धांतिक घोषणा कुछ भी करे, पर उसकी अब तक की नीतियों से हित केवल उद्योगपतियों का ही हो रहा है। जब देश के आर्थिक-साधन, उद्योगपतियों के हाथों में केन्द्रित हो जायेंगे, तब न छोटा कारीगर पनपेगा, न मजदूरों को काम मिलेगा, न किसान को, अपने उत्पादों का समुचित मूल्य मिलेगा और अन्ततः देश तरक्की नहीं करेगा। देश के नाम पर केवल चंद लोग तरक्की करेंगे। फलतः थोड़े-बहुत अंतर के बाद, देश में वही स्थिति पैदा हो जायेगी, जो कभी ब्रिटिश-इंडिया कम्पनी के युग में थी। यदि ऐसा हुआ तो वह देश का दुर्भाग्य होगा।

चौधरी साहब, चंद हाथों में सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण के खतरों से बार-बार सावधान करते हैं। वह कहते हैं—'यदि देश को बचाना है तो नेहरूवादी नीति के स्थान पर गांधीवादी दृष्टिकोण अपना होगा।'[55] कोई यह सोच सकता है कि अब नेहरू तो अतीत के हो गये, पर नीति तो कांग्रेस-शासन में मूलतः वही रही। जनता पार्टी के शासनकाल में, प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई, कांग्रेस-दल से दूर हुए, पर नीति से नहीं। वह स्वयं, किसी समय सिन्डीकेटी नेता कहलाते थे। उन्होंने गांधी जी की समाधि पर शपथ अवश्य ली थी, लेकिन अपने वर्ग-हितों का त्याग कभी नहीं किया था। बाद के कांग्रेसी शासन में, नीतिगत अन्तर कोई नहीं आया, बल्कि मनमोहन सिंह ने आर्थिक उदारीकरण की काली चादर देश के ऊपर अवश्य डाल दी। वी. पी. सिंह तथा अन्य प्रधानमंत्रियों की सरकारें, विवशता में उस काली-चादर को ओढ़ती रहीं और आज की सरकार तो सैद्धांतिक मतभेद होते हुए भी उदारीकरण की उस काली चादर को और गहरा काला करके, गले में डालने का खेल खेल रही है। फलतः बेकारी तथा गरीबी बढ़ी है, कम

नहीं हुई। कम यह तभी होगी, जब स्व. चौधरी साहब की कृषि एवं अर्थनीति को अमली जामा पहनाने के कार्य को ठोस रूप दिया जाने लगेगा।

चौधरी साहब कहते हैं कि आर्थिक-क्षेत्र में हमारी असफलता[56] के दो मुख्य कारण हैं–उद्योग व कृषि के बीच वित्तीय साधनों का गलत वितरण। यह गलत वितरण आज भी ज्यों की त्यों वर्तमान है। वर्तमान नहीं दिनों-दिन बढ़ रहा है। सरकार प्रत्येक क्षेत्र को, वह क्षेत्र चाहे चीनी मिलों का हो अथवा अन्य उद्योगों का, सरकार निरंतर सुविधाएं प्रदान कर रही है। बैंकों, टेलीफोन तथा विविध संस्थानों का निजीकरण इस ओर संकेत करता है। दूसरी ओर कृषि-क्षेत्र में न तो कोई महत्त्वपूर्ण सुविधा प्रदान की गयी, न कृषि के लिए अनिवार्य साधनों की पूर्ति की गई। इसका निवारण तब तक नहीं हो सकेगा, जब तक कि राजनेता नेता कृषि और उद्योग दोनों के विकास के लिए समान नीति नहीं अपनाते। भरे का पेट अधिक भरना और भूखे को भूखों मार डालना राष्ट्रहित की नीति नहीं हो सकती। इसी का परिणाम है कि देश में बेरोजगारी है और यह एक प्रकार की महामारी है। यदि इसको समाप्त नहीं किया जाता, तो यह पूरे समाज तथा राष्ट्र को रोगी बना सकती है। चौधरी साहब की मान्यता है कि 'बेरोजगारी की चुनौती को टाला नहीं जा सकता[57]।' वह बेरोजगारी का कारण आमदनी की असमानता मानते हैं और इस असमानता के निवारण को, बेरोजगारी मिटाने की कुंजी।[58]

अपनी अर्थनीति के संदर्भ में चौधरी साहब का यह कथन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है–'अगर हम चाहते हैं कि हमारा देश विकसित हो तो दो ही नुस्खे हैं–पहला प्रति एकड़ कृषि-उत्पादन बढ़े और साथ-साथ प्रति एकड़ काम करने वालों की संख्या घटे, दूसरा हमारे राष्ट्रीय मनोभाव में, इस अर्थ में परिवर्तन आये कि हम विशेष रूप से हिन्दू, यह मानना छोड़ दें कि संसार तो माया है और व्यक्तिगत रूप से तथा एक राष्ट्र के नाते हमारे मन में यह आकांक्षा उत्पन्न हो जाए कि हमें अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनी है और इसके लिए हमें पहले से अधिक मेहनत करनी है।'[59]

इस समस्त विवेचन से सिद्ध हो जाता है कि चौधरी साहब देश के विकास की दिशा में सही सोचने वाले विचारक थे। वह केवल आश्वासनों तथा सुन्दर भविष्य का स्वप्न दिखाने वाले नारेबाज नेता भी न थे। उनकी अर्थनीति ठोस आधार वाली स्वदेशी नीति थी। वह जानते थे कि विदेशी ऋणों के बल पर किया गया विकास बेमानी है। वह केवल विकास की बढ़ी दर का ढोल पीटने

वाले भी न थे। उनकी अर्थनीति में लघु-उद्योगों का विकास अनिवार्य था, ताकि अधिकांश लोगों को रोजगार मिल जाए। वह कृषि-उत्पादन पर बल इसलिए देते थे कि देश को खाद्यान्नों का आयात न करना पड़े। कृषि-उत्कर्ष के लिए उत्पादन-मूल्य एवं लागत-मूल्य में वह संतुलन चाहते थे। उनकी मान्यता यह भी थी कि उद्योगों की अपेक्षा कृषि-क्षेत्र अधिक लोगों को रोजगार देता है और राष्ट्रीय राजस्व में अधिक योग भी। इसके समर्थन में ये तथ्य उद्धृत किये जा सकते हैं। इस सम्बंध में आंकड़े इस अध्याय में दिये गये हैं। वह मशीनीकरण तथा औद्योगीकरण के भी पक्षधर थे, पर लघु-उद्योगों की कीमत पर नहीं। उनकी मान्यता थी कि लघु-उद्योगों में जिन वस्तुओं का निर्माण किया जाए, उनका उत्पादन बड़े उद्योगों में न हो। इससे दोनों में अवांछित प्रतिद्वंद्विता का विकास न हो सकेगा। वह प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाना आवश्यक मानते थे, पर प्रति एकड़ खेती पर आश्रित रहने वालों की संख्या नहीं। अपने व्याख्यानों में, किसानों को सम्बोधित करते हुए, वह कहा करते थे–'जिस किसान के तीन बेटे हैं, उसको दो बालकों को किसी अन्य नौकरी पर लगा देना चाहिए। खेती पर सिर्फ एक को रखा जाए। यथार्थ में, उनको ग्रामीण कृषि-तंत्र एवं उसकी समस्याओं का समुचित ज्ञान था। अतः उसके समाधान की दिशा भी जानते थे। वह किसान को भाग्य या विधाता पर निर्भर न रहने के लिए कहते और परिश्रम का रास्ता सुझाते थे।

आपने ऐसे नेता तथा प्रशासन-तंत्र पर भी प्रहार किये हैं, जो विदेशों से उधार ली गयी नीति तथा रास्तों से देश का औद्योगीकरण तथा आर्थिक विकास करने के मार्ग पर चल रहे थे और जिनको न तो भारतीय परिस्थिति का ज्ञान था, न नीतियों को पूरी निष्ठा के साथ कार्यरूप में परिणत करने का जोश था। आपकी टिप्पणी है–'वास्तव में, राष्ट्रीय हित में पूर्णतया समर्पित उत्कृष्ट योग्यता के निःस्वार्थ व्यक्ति जो सार्वजनिक कार्य का उसी प्रकार की कुशलता से प्रबंध करते हैं जैसा कि अपने निजी कार्य को संपन्न करते हैं, (ऐसे लोग) किसी भी समाज में अधिक नहीं होते, चाहे वह समाज समाजवादी हो अथवा पूंजीवादी।'[60] ये शब्द इस बात के साक्षी हैं कि स्वाधीनता के बाद प्रबंधतंत्र पर राष्ट्रीय दायित्व तो सौंप दिये गये थे, पर उनमें राष्ट्रीयता की भावना नहीं भरी गई। फलतः देश, औरों की समता में अविकसित रह गया। राष्ट्रीय-क्षेत्र के कर्मचारियों पर आपकी टिप्पणी है–'राष्ट्रीयकरण से कर्मचारियों को केवल एक बात मिली अर्थात् कम काम किया जाए और अधिक वेतन प्राप्त किया जाये।'[61] इसी का परिणाम

देश में भ्रष्टाचार का फैलना, विकास कार्य का रुकना और दायित्वबोध का विघटन हुआ है। इस स्थिति को शिक्षा, राष्ट्रीय प्रशासन और सार्वजनिक उद्योग-क्षेत्र में देखा जा सकता है। किसी कर्मचारी की सेवा-सुरक्षा अच्छी बात है, लेकिन कर्तव्य के प्रति उदासीनता राष्ट्र-हित में नहीं होती। खेद है कि कर्तव्य-पालन के प्रति उदासीन कर्मचारियों को ठीक राह पर लाने की लगन, निष्ठा और क्षमता सरकारों में दृष्टिगत नहीं होती। जो सरकार राष्ट्र-विरोधी मनोवृत्ति को रोकने में विफल रहती है, उसका औचित्य ही क्या है? यदि चौधरी साहब होते तो पलक मारते ही इस राष्ट्र-विरोधी रोग का इलाज कर देते।

देश में बढ़ती बेकारी के कारणों पर प्रकाश डालते हुए आप कहते हैं–'भारी उद्योगों का सबसे खराब परिणाम बढ़ती हुई बेरोजगारी और अल्प रोजगारी है।'[62] 'हमारी अर्थव्यवस्था ने बेरोजगारी को तीव्र गति से बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निबाही है।'[63] इसी संदर्भ में आपका निर्णय है–'यदि भारत को जीवित रखना है और उसे अपना स्थान प्राप्त करना है तो उस विशाल बेरोजगारी और अल्प-रोजगारी को शीघ्रतिशीघ्र मिटा देना होगा, जिससे कि हमारी अर्थव्यवस्था पीड़ित है।'[64] चौधरी साहब के ये शब्द उन सरकारों और नेताओं की आंखें खोलने वाले हैं, जो सोचते हैं कि भारी-उद्योगों के विकास से देश की बेरोजगारी दूर होगी, वे उद्योग चाहे देशी उद्योगपतियों के हों या विदेशी कम्पनियों के? उनके विचार से घरेलू या लघु-उद्योगों के विकास से ही बेरोजगारी की भीड़ को रोजगार मिल सकता है। यह न तो आर्थिक उदारीकरण से सम्भव हो सकेगी, न विदेशी कम्पनियों का जाल बिछाने से होगा और न विनिवेश का राग अलापने से।

उनकी निश्चित मान्यता थी कि 'ग्रामीण भारत ही असली भारत है।'[65] और वह यह भी कहते थे कि 'देश की खुशहाली का रास्ता गांवों और खेतों से होकर गुजरता है।'[66] चौधरी साहब की इस मान्यता के विपरीत, पं. जवाहरलाल नेहरू की कांग्रेस-सरकार राष्ट्रीयकृत उद्योगों के माध्यम से, नरसिंह राव तथा मनमोहन सिंह की कांग्रेस-सरकार उदारीकरण के द्वारा देश की गरीबी दूर करने का प्रयास करती रहीं और विफल हो गई। वर्तमान सरकार निजीकरण और विदेशी कम्पनियों के फैलाव से, बेरोजगारी दूर करने का राग अलापती है, देखना यह है कि ग्रामीण विकास की उपेक्षा करके वह बेकारी दूर करने में कहां तक सफल होती है? यहां यह कहना भी असंगत न होगा कि उसकी डगर भी कांग्रेस की राह से विशेष अलग नहीं है, वरन कुछ क्षेत्रों में तो उसने कांग्रेस को भी पीछे छोड़ दिया है।

चौधरी साहब की स्पष्ट मान्यता यह थी कि 'भ्रष्टाचार सदैव ऊपर से नीचे की ओर चलता है।'[67] कहा भी जाता है कि 'यथा राजा तथा प्रजा'। आपकी स्पष्ट धारणा थी कि 'देश को विचारों से नहीं बल्कि अपने चरित्र से, आचार से, कथनी और करनी से प्रेरणा देनी होगी।'[68] आज के अनेक नेताओं तथा मंत्रियों की तरह वह यह नहीं मानते थे कि 'देश की प्रगति का मानदण्ड इस्पात का उत्पादन कारों, रेफ्रिजरेटरों और टी. वी. सेटों की संख्या से नहीं लगा सकते। इसके लिए रोटी, कपड़ा और मकान की उपलब्धि देखनी होगी।'[69] चौधरी साहब द्वारा निर्धारित देश की प्रगति का मानदण्ड कितना सार्थक है, इसका पता इस तथ्य से लगता है कि आजकल स्कूटर, मोटर साइकिल तथा कारों की भरमार है और वे बिना गारंटी कर्ज पर भी मिलती हैं। फिर भी देश में एक बड़ी आबादी रोटी के अभाव में आत्महत्या कर रही है या भूखे पेट सो रही है। यह स्थिति इसलिए पैदा हुई कि देश के नेताओं के चिंतन और कर्म में अन्तर था। वे सिद्धांतों का आख्यान तो करते थे, पर उनको ठोस आकार प्रदान करने की क्षमता उनमें न थी। चौधरी साहब कहते हैं–'हमारे देश के राजनीतिक नेता और आर्थिक योजनाकार आधुनिक राजनीति, श्रमिक संघवाद, उद्योग, विश्वविद्यालय और प्रशासन में लगे हमारी जनता के छोटे भाग के साथ उन्हीं की विचारधारा के प्रभाव में बह जाते हैं।'[70] देशहित में स्वतंत्र रूप से चिंतन और चिंतन को कठोरतापूर्वक मूर्त रूप देने के अभाव में देश की प्रगति कैसे हो सकती है, इसके लिए आपका एक सुझाव और है, वह है जनता और नेता का मानसिक परिवर्तन होना अर्थात् नेता को देश की स्थिति का सही ज्ञान करना और ईमानदारी के साथ कठोर कदम उठाकर देश की गिरावट को दूर करना है। जनता द्वारा ऐसे नेता को समर्थन देना, वह आवश्यक मानते थे।

देश में गरीबी, भ्रष्टाचार, अशिक्षा और अभावों को दूर करने के लिए चौधरी साहब का परामर्श है–'प्रत्यक्ष बुराइयों को दूर करने के लिए शांतिपूर्ण संघर्ष आवश्यक है।'[71] देश की प्रगति के लिए, चौधरी साहब आत्मबल, सदाचार, श्रम और ईमानदारी को जितना आवश्यक मानते हैं, उतना ही आवश्यक धर्म-निरपेक्षता को भी मानते हैं।[72] चौधरी साहब की दृष्टि, प्रारम्भ से ही देश के आर्थिक दृष्टि से कमजोर, सामाजिक स्तर पर भेदभाव के शिकार और शिक्षा तथा प्रगति के क्षेत्र में पिछड़े वर्ग को सब प्रकार से सशक्त और समर्थ बनाने पर टिकी थी। यही कारण है कि आपने प्रधानमंत्री के रूप से शपथ लेने के बाद, 28 जुलाई 1979 के दिन, राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए, देश की समुचित प्रगति के न

होने पर दुःख व्यक्त करते हुए कहा था–'हम सब बड़े दुःख के साथ इस तथ्य वे अवगत हैं कि हमारे नेता की सुंदरतम इच्छाओं के बावजूद हर क्षेत्र में, हमारी उपलब्धियां, हमारी आकांक्षाओं से बहुत कम रही है। स्वाधीनता के तीस वर्ष उपरान्त भी हम विश्व के राष्ट्रों में गरीब हैं।'[73]

देश की गरीबी और अविकसित होने की स्थिति का ज्ञापन कराते हुए आपने इसके निवारण का आश्वासन देते हुए कहा था–'गरीबी का उन्मूलन, बेरोजगारी को समाप्त करना और आय तथा सम्पत्ति के अन्तर को कम करना हमारी सरकार की प्राथमिकता होगी[74]।' इससे स्पष्ट होता है कि गरीबी को चौधरी साहब देश का शाप मानते थे और इसके रहते राष्ट्र के विकास तथा उत्कर्ष को दूरागत कल्पना स्वीकार करते थे अर्थात् असम्भव मानते थे।

देश के आत्मकेन्द्रित उच्चवर्गीय बुद्धिजीवियों, पैसे को परमात्मा मानने वाले साहूकारों, दौलत के भूखे उद्योगपतियों और स्वार्थलोलुप जातिवादी नीति को सत्ता पाने का आधार बनाने वाले नेताओं ने वह स्थिति नहीं आने दी कि देश से गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, अज्ञान, सामाजिक विषमता एवं जातीय भेदभाव का निवारण होता और राष्ट्रहितों के साथ प्रतिबद्धता की भावना का विकास होता। स्वाधीनता के बाद देश की जनता के सामने समुचित विकास सम्बन्धी आशा की किरणें फूटी थीं, वे लगभग चार दशकों के कांग्रेस के शासन में, एक बड़ी सीमा तक धूमिल पड़ गई थीं, उसके बाद तो पुनः अंधकार में छिपती जा रही हैं। देश की जनता, यह आशा लगाये बैठी है कि कब चरणसिंह जैसा राष्ट्रीय हितों के साथ प्रतिबद्ध व्यक्ति उभर कर आए और इस अंधकार में डूबे जनता के आशा-सूर्य को बाहर निकलने का मौका दे।

संदर्भ

1. हमारा आर्थिक दर्शन, सन् 1984, पृ. 6-7
2. वही, पृ. 7
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही, पृ. 1
7. वही
8. वही, पृ. 5

9. चौधरी चरण सिंह, भारत का आर्थिक पतन : कारण एवं समाधान, पृ. 8
10-11. वही
12-13. वही, पृ. 9
14. वही, पृ. 10
15. वही, पृ. 11
16-17. वही, पृ. 12
18. वही, पृ. 12
19-20-21, वही, पृ. 14
22. वही, पृ. 15
23. वही, पृ. 15
24. वही, पृ. 17
25 चौधरी चरण सिंह, आर्थिक विकास के सवाल और बौद्धिक दिवालियापन, पृ. 29-30
26. वही, पृ. 29-30
27. वही, पृ. 5
28. वही, पृ. 9
29. रॉयल बुलेटिन, मुजफ्फरनगर, दिनांक 22-3-2001, पृ. 1
30. वही
31. चौधरी चरण सिंह, आर्थिक विकास के सवाल और बौद्धिक दिवालियापन, पृ.22
32. वही, पृ. 27
33. वही, पृ. 28
34. दैनिक जागरण, दिनांक 22-2-2001 (मेरठ)
35. वही, दिनांक 25-1-2001 (मेरठ)
26. राष्ट्रीय सहारा, दिनांक 6-6-1999, पृ. 3
37. दैनिक जागरण, दिनांक 2-4-2001, पृ. 13 (मेरठ)
38. गांव की ओर, पृ. 32
39. हमारा आर्थिक दर्शन, पृ. 11
40. वही
41. वही
42. चौधरी चरण सिंह, भारत की अर्थनीति : गांधीवादी रूपरेखा, पृ. 11
43. वही
44. वही, पृ. 13
45. वही, पृ. 25
46. वही, पृ. 28
47. वही, पृ. 32

48. वही, पृ. 39
49. वही, पृ. 47
50. वही, पृ. 47
51. वही, पृ. 56-62
52. वही, पृ. 72-76
53. वही, पृ. 78-83
54. वही, पृ. 84-91
55. वही, पृ. 103
56. वही
57. वही, पृ. 115
58. वही
59. वही, पृ. 17
60. चौधरी चरण सिंह : सूक्ति और विचार, पृ. 85
61. वही, प्र. 86
62. वही, पृ. 89
63. वही, पृ. 90
64. वही, पृ. 93
65. वही, पृ. 95
66. वही
67. वही, पृ. 97
68. वही
69. वही, पृ. 98
70. वही, पृ. 101
71. वही, पृ. 96
72. वही, पृ. 106
73. आर. के. हुड्डा, मैन ऑफ दि मासेज चौधरी चरण सिंह, पृ. 72
74. वही, पृ. 71

सभ्यता, संस्कृति और व्यावहारिक ज्ञान विषयक चौधरी साहब की मान्यताएं

चौधरी चरण सिंह अपने विचार तथा आचरण के स्तर पर विशुद्ध भारतीय थे। वह चीनी वैज्ञानिक कन्फ्यूशस के इस सिद्धांत से सहमत थे 'दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि तुम दूसरों से अपने लिए चाहते हो।'[1] वह चाणक्य के इस कथन से भी सहमत थे–'आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति सः पण्डित' अर्थात् विद्वान् वह है जो समस्त लोगों को अपने समान देखता है। सब लोगों को अपने समान देखना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म होता है और यही सभ्यता एवं संस्कृति की कसोटी है। इस कसौटी को ही आप, 'मनुष्य समाज को सुखी बनाने की एक विशेष विधि मानते हैं।'[2] इसकी परिभाषा करते हुए आपने लिखा है–'शिष्टाचार के अन्तर्गत मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन के प्रत्येक कार्य–उदाहरणार्थ उसका रहना-सहना, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-चालना, सोना-जागना, नहाना-धोना आदि सभी आते हैं।'[3] इसका अर्थ यह हुआ कि आप एक व्यक्ति विशेष के, दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य में एक प्रकार की सफाई, सादगी और श्रेष्ठता को सभ्यता के आयाम मानते हैं।

चौधरी साहब अच्छे शिष्टाचार वाला आदमी उसी को मानते हैं, जो अपने बड़ों से नम्रतापूर्वक अभिवादन करता है, सच्चरित्र लोगों के साथ मिलता है, जो घर पर आये अतिथि का स्वागत करता है, दूसरों के दुःखों में शामिल होता है, जो स्वच्छ वस्त्र पहनता है, जिसकी बातचीत में शालीनता होती है, जो दूसरों की सम्पत्ति का उपयोग नहीं करता और जो सामाजिक कार्यों में शामिल होता है। यही यथार्थ में भारतीय सभ्यता भी है और आत्मा के उत्कर्ष का साधन अर्थात् संस्कृति का मार्ग भी।

आप शिष्टाचार का सम्बंध अच्छे स्वास्थ्य के साथ भी जोड़ते हैं और यह बताते हैं कि स्वस्थ रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रातःकाल जागना चाहिए

अर्थात् सूर्य निकलने के बाद तक सोते रहना नहीं चाहिए, जागने के बाद तुरन्त शौचकर्म करके शरीर की सफाई करनी चाहिए। इसके बाद यथाशक्ति व्यायाम करना अथवा कोई ऐसा खेल खेलना चाहिए जिससे व्यायाम होता हो। आपकी दृष्टि में आंखों की सफाई, अपने रहने के स्थान की सफाई और रोगी की सेवा भी शिष्टाचार का एक अंग है। वायु, पानी, प्रकाश और भोजन का संतुलित उपयोग स्वास्थ्य के लिए आप आवश्यक मानते हैं। आप, यह भी स्वीकार करते हैं कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए समुचित नींद लेना भी आवश्यक है। आपकी मान्यता है–'सदैव नियत समय पर सोना और सूर्य निकलने से पूर्व नियत समय पर उठ जाना चाहिए।'[4] आप कम सोने को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मानते हैं। आपका सुझाव है कि 'बड़ों को छह-सात घंटे व कम उम्र वालों के लिए आठ-नौ घंटे सोना जरूरी है। बहुत छोटे बच्चों को दिन में 15 घंटे सोने की आवश्यकता हैं।'[5] आप यह भी मानते हैं कि सोने का स्थान शांत, एकान्त, यथार्थ में शिष्टाचार सभ्यता की पहली सीढ़ी है। शिष्ट व्यक्ति सभ्यता की दिशा में सजगता के साथ बढ़ता और फिर वह भारतीय संस्कृति की ऊंचाइयों को छूने लगता है। जिन लोगों ने सभ्यता के साथ चौधरी साहब के चिंतन और कर्म को देखा है, वे विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि संस्कृति उनके चरित्र की विशेष धरोहर थी।

जादू सिर चढ़कर बोलता है

स्वर्गीय चौधरी साहब ईमानदार राजनीतिक नेता और कठोर प्रशासक थे। वह स्वयं बेदाग और कठोर परिश्रमी थे। अतः हमेशा तीखी नजरों से यह देखते रहते थे कि उनके विभाग का कोई कर्मचारी कमजोर तथा रिश्वतखोर तो नहीं है? उनके इन गुणों की प्रशंसा, उनके विरोधी भी करते थे। कुछ लोग सत्य और ईमानदारी के प्रति उनकी निष्ठा को उनका जिद्दीपन कहा करते थे, लेकिन उन पर बेईमानी और कार्यशिथिलता का आरोप किसी ने नहीं लगाया।

एक समय था कि प्रदेश के मंत्री तथा उनका कार्यालय पहाड़ों पर चला जाया करता था, लेकिन चौधरी साहब इसको फिजूलखर्ची, गरीब जनता के साथ अन्याय और अंग्रेजों की नकल कहा करते थे। बात सन् 1958 की है। जनता वैदिक कॉलेज, बड़ौत में एम. ए. कक्षाएं प्रारम्भ होने में कुछ व्यवधान आ गया था। इसके निवारण के लिए प्रबंध-समिति के सचिव स्वर्गीय रणजीत सिंह और इन्टर कालेज के प्रिंसिपल चौधरी माधव सिंह ने परामर्श करके मुझे लखनऊ चौधरी साहब से मिलकर रास्ता साफ करने के लिए भेजा। बड़ी मुश्किल से

विधान-सभा में प्रवेश पाया और उनके आफिस तक पहुंच तो गया, पर भेंट के लिए कई घंटे प्रतीक्षा करनी पड़ी। जैसे ही, उनका पी. ए. बाहर गया, मैंने चौधरी साहब के कक्ष की चिक उठाई, भीतर आने की आज्ञा मांगी और चला गया। वह बनियान और धोती पहने बैठे थे और जून की दोपहरी में काम कर रहे थे। यह इस बात का प्रमाण है कि वह जो कहते थे, वही करते भी थे। मैं एक सार्वजनिक और उनके चुनाव-क्षेत्र की प्रमुख शिक्षा-संस्था का काम लेकर गया था। अतः आपने विशेष रुचि लेकर काम करा दिया। यदि कार्य व्यक्तिगत होता तो वह सुनते भी नहीं। इस प्रकार का एक उदाहरण देखिये–

बड़ौत के लाला श्रीराम खत्री चौधरी साहब के भक्त थे। चौधरी साहब के विभाग का एक भ्रष्ट इंजीनियर, बड़ौत के एक लाला को लेकर खत्री जी से मिला। दोनों के आग्रह पर, श्रीराम खत्री उसकी सिफारिश करने लखनउ गये। चौधरी साहब से उस इंजीनियर की फाइल मंगाई और एक घंटे तक पढ़ी। पढ़कर फाइल मेज पर रख दी और माथे पर हाथ रखकर बैठ गये। लालाजी ने पूछा चौधरी साहब क्या बात है? उनका उत्तर था–'लालाजी फाइल में से बदबू आती है। यह थी, चौधरी साहब की ईमानदारी। वही इंजीनियर बाद में, चौधरी साहब के मंत्री न रहने पर, पदोन्नति पा गया था। देखिए कितना अन्तर है, एक ईमानदार नेता में और एक गैर-ईमानदार प्रशासक में।'

मुझे आगरा में, एक जिला कृषि-अधिकारी मिले थे। चौधरी साहब ने उनको, एक शिकायत मिलने पर, ऊंचे पद से हटाकर, उनके असली पद जिला-कृषि अधिकारी पर लौटा दिया था। यथार्थ में वह निर्दोष थे। किसी ने उनकी झूठी शिकायत की थी। जिसका परिणाम हुआ पदावनति। मेरे कहने पर, उन्होंने चौधरी साहब को पत्र लिखा। उनसे प्रार्थना की, आप जांच करा लें, यदि मैं दोषी हूं तो मुझे बर्खात कर दिया जाए। चौधरी साहब ने जांच कराई, निर्दोष सिद्ध होने पर एक नये विभाग का डायरेक्टर बना दिया। यह था, उनका न्याय। यथार्थ में उनके एक हाथ में दण्ड और दूसरे हाथ में वरदान रहता था। दोषी पर दण्ड का प्रहार होता था और योग्य तथा कर्मठ लोगों को उनका स्नेह मिलता था। उत्तर-प्रदेश में उनके मंत्री तथा मुख्यमंत्री काल के ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। 1977 में केन्द्रीय सरकार के गृहमंत्री के रूप में कुछ उदाहरण पेश हैं। वह अपने कार्यालय में पहुंचे भी न थे कि भ्रष्टाचार तथा अयोग्यता-विरोधी उनके स्वभाव तथा कठोर निर्णयों की कहानियां केन्द्रीय सरकार के गलियारों में पहुंच गई थी। 'सबसे बड़ी सनसनी तो उस समय फैली जब सिविल-सर्विस के दो

राजनीतिक नेता हैं। उनके कुछ आर्थिक विचारों को चुनौती नहीं दी जा सकती, उनकी व्यक्तिगत ईमानदारी भी असंदिग्ध है वह जो कुछ कहते हैं, प्रायः वही सम्पूर्ण सत्य होता है। जयप्रकाश नारायण द्वारा पूर्व निर्धारित समस्त दलों के जनता पार्टी के साथ गठबंधन नहीं, वरन् विलय के सिद्धात को मूर्तरूप देने वाले वह एक मात्र व्यक्ति थे।'[13] खन्ना जी की यह टिप्पणी, अनेक नेताओं द्वारा फैलाये इस प्रचार पर प्रहार करती है कि जनता पार्टी के विभाजन में चौधरी साहब की भूमिका थी।

चौधरी साहब के 77वें जन्मदिन पर दिल्ली के बोट क्लब पर आयोजित किसान-रैली के सम्बंध में, श्री खन्ना की मान्यता है कि देश का कोई राजनीतिक नेता या दल इतना बड़ा प्रदर्शन करने में सफल नहीं हुआ। वह चौधरी साहब के इस मत का भी समर्थन करते हैं कि खेती पर निर्भर रहने वाले जितने कम व्यक्ति होंगे, उतने ही अधिक व्यक्ति उद्योगों तथा अन्य सेवाओं के लिए उपलब्ध होंगे। चौधरी साहब द्वारा, भारतीय राजनीति में दो दलों का अस्तित्व कायम करने के प्रयासों की भी श्री खन्ना प्रशंसा करते हैं।

एक अन्य प्रख्यात पत्रकार रणजीतराय ने कलकत्ता से प्रकाशित 'रविवार' (साप्ताहिक) 12 जून 1977 में चौधरी साहब के विचार तथा कार्यों की सराहना करते हुए लिखा है–'जो लोग चरण सिंह को समझते हैं वे इस बात से सहमत हैं कि वह इरादे तथा निश्चित विचारों के आदमी हैं। वह निष्कपट तथा सच्चे व्यक्ति हैं और उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपनी आकांक्षाओं का दुराव करना नहीं जानते। वह गहरे स्नेह और विराग के व्यक्ति हैं। मेरठ में वह एक वकील के रूप में नहीं चमके पर राजनीति के क्षेत्र में बहुत ऊपर उठ गये हैं।' वह एक ऐसे असाधारण तथा दुर्लभ राजनीतिक नेता हैं, जिसके विरुद्ध भ्रष्टाचार का कोई आरोप नहीं है।'[14]

चौधरी साहब के सम्बंध में तीनों विद्वानों के विचारों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह राजनीति के कीचड़ में कमल के समान थे, जिस पर भ्रष्टाचार तथा दुराचार की गंदगी की कोई बूंद न पड़ सकी थी। सत्ता उनके लिए देश की साधनहीन तथा गरीब जनता के भाग्य को पलटने का माध्यम थी, भोग तथा विलासिता का साधन नहीं, उनकी प्राथमिकता बेरोजगार तथा बेसहारा आदमी को रोजगार तथा सहारा देने की थी, अपने परिवार के लिए सम्पत्ति का संग्रह करने की नहीं। उनके लिए देश तथा समाज-हित आराधना का विषय था, किसी मंदिर में पूजा करना नहीं। वह आज के अनेक नेताओं के समान न तो विदेशों

का भ्रमण करने में राष्ट्रीय सम्पत्ति का व्यय करना पसंद करते थे, न धर्म के नाम पर नदियों के पूजन तथा तीर्थ-गमन में विश्वास रखते थे। उनका धर्म था, केवल लोगों का भला करना। इस अर्थ में, वह सच्चे वैष्णव तथा धार्मिक थे। वह न तो धार्मिक होने का ढोंग करते थे, न भारतीय संस्कृति की रक्षा का छलावा करते थे। उनके लिए सबसे बड़ी संस्कृति समस्त जातियों की एकता एवं समता थी और सबसे बड़ा धर्म लोगों के आर्थिक अभाव का निवारण करना था। यह कहना असंगत न होगा कि इस कसौटी पर, देश के बहुत कम नेता चौधरी साहब की पंक्ति में खड़े होने की योग्यता रखते हैं।

संसद के केन्द्रीय कक्ष में चौधरी साहब के चित्र का अनावरण करते हुए राष्ट्रपति महामहिम डा. शंकरदयाल शर्मा ने कहा था—'चौधरी चरण सिंह उन भारतीय विभूतियों में से हैं जिन्होंने अपनी कर्मठता, लगन और आम लोगों के विकास के प्रति समर्पण के कारण समाज में अपना एक अलग स्थान बनाया। लोकप्रियता की ऊंचाइयों तक पहुंच कर भी वे खेती की माटी और भूमि की गंध को नहीं भूले। जीवन भर एक संघर्षशील नेता के रूप में वे भारतीय ग्रामीण जीवन के उत्थान और गांवों की प्रगति के लिए जूझते रहे।'[15] इसके बाद आपने कहा था—'स्वतंत्रता सेनानी, प्रशासक, प्रसिद्ध संसद्‌विद, केन्द्र और राज्य में मंत्री के रूप में तथा अन्ततः प्रधानमंत्री के गौरवपूर्ण पद पर कार्य करते हुए चौधरी चरण सिंह ने हम सब के मानस-पद पर अमिट छाप छोड़ी है।'[16]

इसी अवसर पर तत्कालीन लोकसभा के स्पीकर श्री शिवराज पाटिल ने इन शब्दों के माध्यम से, चौधरी साहब के प्रति अपने आदरभाव को प्रकट किया—'श्री चरण सिंह जी का जीवन बहुत ही सादा था। उनके जीवन में देहात के जीवन की प्रतिमा, आदर्श और गरिमा का दर्शन होता था।'[17] अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए स्पीकर महोदय ने कहा था—'चरण सिंह जी का संघर्ष, उनके मन की पीड़ा और उनके राजकीय पैंतरों से भी हमारा समाज, हम सब, कुछ सीख सकते हैं। कुछ पाने का प्रयत्न कर सकते हैं और देश को, समाज को, अधिक अर्थपूर्ण, समृद्ध और समृद्धशाली बनाने का प्रयास कर सकते हैं।'[18]

देश के प्रथम नागरिक और लोकसभा अध्यक्ष के ये शब्द तथ्य के परिचायक हैं, चाटुकारिता के प्रतीक नहीं। प्रशंसा तथा ख्याति की इस ऊंचाई पर चौधरी साहब इसलिए पहुंचे थे कि उन्होंने यावज्जीवन जनता के हितों की रक्षा, समाज में अनुशासन और राष्ट्र की प्रगति की दिशा को संभव बनाने के लिए अथक संघर्ष किया था और पैसा कमाने के लालच से सदैव दूर रहे थे। यह एक निर्विवाद

सत्य है कि न तो उनका कोई सैक्रेटरी करोड़ों का मालिक बना था, न कोई रिश्तेदार किसी सौदे की दलाली का अंग था, न उन्होंने कोई फार्म-हाउस बनाया था, और न कहीं कोठियों की लाइनें खड़ी की थीं। वह खाली हाथ पैदा हुए थे और खाली हाथ चले गये। लेकिन एक कर्मठ, बेदाग ईमानदार और जनता के पक्षधर नेता का अमिट यश लेकर अवश्य गये। भारत के कई प्रधानमंत्रियों पर कीचड़ें उछलीं थीं और अब भी उछल रही हैं, लेकिन उनका घोर विरोधी भी उन पर बेईमानी के धंधों में शामिल होने का आरोप नहीं लगा पाया है।

यथार्थ में, उनका अधिक समय प्रशासन को ठीक करने तथा संवैधानिक तरीकों से जनता को अधिकाशिक लाभ पहुंचाने की योजनाओं पर लगा रहता था। संध्या समय घर पर आने के बाद वह या तो बच्चों को देशभक्तों की कहानियां सुनाने अथवा निकट के लोगों के साथ ताश खेलने में बिताते थे। उनकी जीवनप्रक्रिया में अवैधानिक रूप से धन जुटाने अथवा आर्थिक-घोटालों का जाल बुनने का समय हयी नहीं था। वह आजकल के तथाकथित अर्थशास्त्रियों, उदारीकरण के पक्षधर राजनीतिक नेताओं और वैश्वीकरण समर्थक वित्तमंत्रियों से भिन्न, यह मत रखते थे–'भारतवर्ष में सम्पूर्ण दुनिया के उद्योग उठाकर लगा दिये जायें तथा कृषि की अवहेलना की जाये तो वह सारे उद्योग छह महीने में ही बंद करने पड़ेंगे।'[19] चौधरी साहब की इस मान्यता में बड़ा दम है। वैश्वीकरण और मुक्त-बाजार के युग में देखा जा रहा है कि भारत के बाजार चीन में बने उत्पादों से भरे पड़े हैं और उनकी प्रत्येक चीज, भारतीय उद्योग के मुकाबले में सस्ती है। फलतः भारतीय उत्पादों की बिक्री घट गयी है और चीनी उत्पादों की बढ़ गयी है।

यदि किसी सरकार का उद्देश्य देश की बहुसंख्यक जनता की आर्थिक स्थिति सुधारनी है तो उनकी अर्थनीति को व्यवहार में लाये बिना काम नहीं चल सकता। देश की अधिकांश जनता के हितों पर कुठाराघात करके, अर्थात् भूखों को अधिक भूखा बनाकर और भरे पेट वालों का पेट और अधिक भरने को न तो अच्छा प्रशासक कहा जा सकता है, न देशभक्त माना जा सकता है और न नैतिक मूल्यों का हामी कहा जा सकता है। क्योंकि प्रशासक की सबसे बड़ी नैतिकता या धर्म माना गया है अपनी प्रजा का पालन, उसको सुखी तथा सम्पन्न बनाना। स्वतंत्र भारत के अनेक नेता-प्रशासकों को, जब इस कसौटी पर कसा जाता है, तब बहुत कम लोग इस पर खरे उतरते हैं, लेकिन चौधरी साहब का प्रत्येक कार्य, इस कसौटी पर खरा उतरता है। यदि कांग्रेस के अन्य

नेताओं ने, यही आर्थिक और नैतिक नीति अपनाई होती, तो न देश गरीबी, बेरोजगारी, अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार और असामाजिकता की ओर बढ़ता और न उसे अपनी प्रगति के लिए औरों की ओर देखना पड़ता। यथार्थ में सत्ता के मोह से अपने को दूर रखना, उसके दुरुपयोग से स्वयं को और दूसरों को बचाना, बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य होता है, लेकिन इस शैली को चौधरी चरणसिंह, लोकनायक जयप्रकाश नारायण तथा लोहिया जैसे लोग ही अपना सकते हैं। इन लोगों ने वैभव को लात मारी, सत्ता का मोह छोड़ा, अनेक प्रलोभनों से आंखें फेर लीं, पर जनहित के लिए निरंतर प्रयास नहीं छोड़े।

चौधरी साहब की एक विशेषता यह थी कि वह आधुनिक बनने के नाम पर किसी ऐसे सिद्धांत का समर्थन नहीं करते थे, जिसे अव्यावहारिक समझते हों या भारत की परिस्थितियों के अनुकूल न मानते हों। इसका प्रमाण है कादम्बिनी पत्रिका का अगस्त, 1977 का अंक। संपादक राजेन्द्र अवस्थी के प्रश्न के उत्तर में आपने कहा था–'जिसे वैज्ञानिक समाजवाद कहते हैं, उससे मैं बिल्कुल सहमत नहीं हूं।'[20] अपनी असहमति का कारण बताते हुए, आपने भारत के लिए सोची गयी अपनी व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहा था–'मैं यह चाहता हूं कि इस देश की ऐसी अर्थव्यवस्था हो कि व्यक्ति दूसरे के अधीन न हो। वह अपनी रोटी कमाने के लिए, रोजगार के लिए स्वतंत्र हो। वह स्वयं मालिक भी हो और मजदूर भी हो। ऐसा कृषि-क्षेत्र में भी हो और औद्योगिक क्षेत्र में भी। इससे पैदावार ज्यादा बढ़ती है। छोटी इकाइयों से रोजगार के साधन फैलते हैं, बड़े कारखानों से रोजगार कम होता है और गरीब तथा अमीर का फर्क बढ़ता है। छोटी इकाइयों में हर आदमी रोजगार का मालिक होता है।'[21]

चौधरी साहब की मान्यता का आधार मनोवैज्ञानिक सत्य पर केन्द्रित है। वह मानते हैं कि काम करने वाला व्यक्ति जब मालिक की हैसियत से काम करता है, तब वह काम की सुन्दर सफलता के साथ जुड़ा होता है, लेकिन जब उसको काम में मालिकाना हक दिखाई नहीं पड़ता, तब उसमें थोड़ा बहुत अलगाव भी पैदा हो जाता है। अलगाव की स्थिति में उत्पादन की गुणवत्ता तथा मात्रा दोनों ही प्रभावित हो सकती है और प्रायः हो भी जाती है।

चौधरी साहब द्वारा मिलों के विरोध पर, 'कादम्बिनी' के सम्पादक का तर्क था, यदि कपड़ा-मिलों को बन्द कर दिया गया तो मजदूरों का क्या होगा? इस पर उनका उत्तर था, 'केवल 9 लाख मजदूर हैं इन कारखानों में, जितना कपड़ा वे बना रहे हैं, उतना कपड़ा करघे से बनाने पर एक करोड़ आठ लाख

कर्मचारी बोहरा व अग्रवाल को निलंबित किया गया। ऐसा उदाहरण अंग्रेजी-राज के इतिहास में भी अप्राप्य है। कांग्रेस-शासन में भी केन्द्रीय सरकार के सचिव-पद पर कार्यरत किसी कर्मचारी को इस प्रकार निलंबित नहीं किया गया था।'[6] यही नहीं, दिल्ली के पुलिस-कमिश्नर के पद पर उत्तर-प्रदेश से डेपूटेशन पर लाकर, अपनी ईमानदारी तथा कार्यकुशलता के लिए विख्यात श्री जे. एन. चतुर्वेदी को आपने बिठाया था और इंस्पेक्टर जनरल भवानीमल को उनके मौलिक पद पर वापस भेज दिया गया था। कै. रणसिंह राणा ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 76 तथा 77 पर आपातकालीन दिल्ली-पुलिस के भ्रष्टाचार विषयक उदाहरण दिये हैं। उनको पढ़कर यह जाना जा सकता है कि व्यवस्था और शांति की रक्षक, देश की राजधानी की पुलिस की स्थिति क्या थी? निश्चय ही यह कांग्रेस प्रशासन की देन थी।

केन्द्रीय सरकार के गृहमंत्री के रूप में उनका पहला काम पुलिस-विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाना था। सच बात यह है कि भ्रष्टाचार-विरोधी ऐसा प्रशासक स्वतंत्र-भारत के इतिहास में देखने को कम ही मिलते हैं। अनेक नेताओं की तरह वह अपनी कृपा की वर्षा, केवल अपने परिवार के सदस्यों, रिश्तेदारों तथा परिचितों पर करने के आदी न थे। वह योग्यता और श्रम को महत्त्व देते थे। उनके निर्णय जनहित को दृष्टि में रखकर होते थे। रिश्वतखोर पटवारियों को घर बिठाना, छात्र-यूनियनों को वैकल्पिक बनाना और शिक्षा-संस्थाओं के जाति-सूचक नामों को बदलवा देना आदि उनके दृढ़-निश्चय के परिणाम हैं। यही कारण है कि उनकी नीतियों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा होती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–'वह हिन्दू-एकता के विचारों से जहां आकर्षित हुए थे, वहीं उन्होंने परंपरागत श्रेणीबद्ध जाति-व्यवस्था, जिसके कारण निम्न श्रेणी के लोग निकृष्ट माने जाते थे, को पूर्णतः अस्वीकार किया (मधु लिमये)' हालांकि लोकतंत्र और विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था में उनका गहरा और ईमानदार विश्वास था, फिर भी उन्होंने महसूस किया कि सत्ता के बगैर कुछ भी नहीं किया जा सकता। इसलिए वे सत्ता चाहते थे और उसे पाने के लिए उन्होंने विरोधाभासी गठबंधन भी किये। गैर-कांग्रेसी पार्टियों को एक मंच पर लाने का भरसक प्रयास किया, लेकिन यह सब सत्ता का सुख भोगने के लिए नहीं, वरन् सत्ता के माध्यम से देश के लोगों का भाग्य पलट देने के लिए किया था। वह भली प्रकार जानते थे कि सामाजिक कार्यकर्ता, अपनी लगन और निष्ठा से, जनता के मनो को बदल सकता है, पर कानून बनाकर लोगों के भाग्य को नहीं पलटा जा सकता। इसीलिए वह राजनीति

की ओर आए, कांग्रेस के समर्थ कार्यकर्ता बने, विभिन्न विभागों में मंत्री रहे, उनको जैसे ही यह विश्वास हो गया कि कांग्रेस के अंग बने रहकर, जनहित के कानून नहीं बना सकते, उसी दिन उन्होंने कांग्रेस से स्वयं को अलग कर लिया था। कांग्रेस का अंग बन जाना और उसके बन्धन से अलग हो जाना दोनों क्रियाओं के मूल में उनकी उत्कट देशभक्ति एवं जनता के हितों की कामना थी, वैयक्तिक लालसा का तत्त्व लेशमात्र न था। इसी भावना से प्रेरित होकर, अपना केन्द्र में कांग्रेस-विरोधी दलों से भी गठबंधन किया और यहां भी अभिप्रेत की पूर्ति न होने पर पुनः कांग्रेस के साथ उन्होंने सम्बंध बनाये। फिर भी आम कांग्रेसियों की तरह, वह खालिस रूप से सत्ता के पीछे भागने वाले राजनीतिज्ञ न थे।'[7]

मधु जी का यह विचार सोलह आना सही है कि उन्होंने (चौधरी साहब ने) गठबंधन किये, पर केवल सत्ता में बने रहने के लिए नहीं, जैसा कि आजकल हो रहा है। यथार्थ में, उनकी दृष्टि भारत की समृद्धि और शक्ति-अर्जित करने पर टिकी थी और यह काम हो सकता था, केवल सत्ता के आसन पर बैठकर। कांग्रेस में रहकर, उन्होंने जमींदारों के शोषण से, किसानों को मुक्त किया, ग्रामीण-विकास की योजनाएं बनाई थीं और लागू भी की। उदाहरण के लिए राजबाहों की पटरियों को सार्वजनिक प्रयोग के लिए खोल देना, किसानों के नलकूपों के कनैक्शन तुरन्त जारी करा देना, भ्रष्ट अधिकारियों को घर बिठा देना, शिक्षा-संस्थाओं में अध्ययन-अध्यापन में गम्भीर वातावरण पैदा करना आदि। सत्ता से बाहर रहकर, लोकहित के काम नहीं हो सकते थे। इस संदर्भ में कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं—'चौधरी साहब ने मुख्यमंत्री बनते ही निचले तबकों और किसानों की हालत में सुधार लाने के अनेक काम किये। कुटीर उद्योग तथा कृषि-उत्पादन में वृद्धि की योजनाओं को क्रियान्वित करने की दृष्टि से सरकारी एजेंसियों द्वारा ऋण देने के तौर-तरीकों को सुगम बनाना, साढ़े छह एकड़ तक की जोत पर आधा लगान माफ करना, दो रुपये तक का लगान बिल्कुल समाप्त कर देना, किसानों की उपज, विशेषकर नकदी वाली फसलों के लाभकारी मूल्य दिलाना, भूमिभवन कर समाप्त करना और राष्ट्रभाषा हिन्दी को सरकारी काम-काज की भाषा बना देना।'[8]

कुछ संकीर्ण राजनीति से जुड़े कांग्रसी-नेताओं की मान्यता थी कि चौधरी साहब ने कांग्रेस को धोखा दिया था। इसका खण्डन करते हैं, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सचिव जयराम रमेश। आपकी मान्यता है—'चरण सिंह ने कांग्रेस

को धोखा नहीं दिया था। यह कहने के लिए मुझे क्षमा करें कि कांग्रेस चरणसिंह जैसे लोगों, पिछड़े वर्ग के लोगों, जमींदारी उन्मूलन और हरित-क्रांति के फायदा उठाने वाले लोगों की आकांक्षाओं को समझ नहीं पायी, उनको उचित स्थान नहीं दे पायी।'[9] जयराम रमेश का कथन सोलह आना सही है। एक लम्बे समय तक, कांग्रेस में ऐसे लोगों का अभाव रहा है, जिनका चिंतन परिवार-पोषण तथा दलगत नीति से बाहर निकल कर, आम आदमी के हितों के साथ जुड़ा हो। जिन लोगों ने, नेता की अनुपयोगी नीति के विरोध में बोलने का साहस किया तो उनको राजनीति से या तो सन्यास लेना पड़ा या कांग्रेस छोड़नी पड़ी। ऐसे लोगों की एक लम्बी सूची है। यही कारण है कि कांग्रेस ख्याति की बुलन्दी से नीचे आ गयी।

अपने नेता की हर बात को, आंखें बंद करके मान लेने वाले अनुयायियों से दल और देश की कितनी हानि होती है, इसकी ओर श्री जयराम रमेश के ये शब्द संकेत करते हैं–'पिछले अनेक वर्षों से मैं कहता और लिखता आया हूं कि यदि कोई एक व्यक्ति है जिसने उत्तर-प्रदेश में जमींदारी-उन्मूलन के लिए, भूमि की चकबंदी के लिए, कृषि के लिए, सबसे अधिक प्रयास किया, यदि कोई एक व्यक्ति है जिसने सहकारी खेती की अनुचित असंगत सोच के विरुद्ध संघर्ष किया और भारतीय-कृषि को विनाशकारी रूसी मार्ग पर जाने से बचाया, यदि कोई एक व्यक्ति है जिसने इस देश में निश्चित और स्पष्ट सामाजिक-आर्थिक प्रयोजन से पिछड़े वर्ग की उद्देश्य पूर्ण राजनीति का उद्घोष किया तो वह चरण सिंह के अलावा और कोई नहीं हैं।'[10] चौधरी साहब के चिंतन और कर्म की सही दिशा की प्रशंसा में कहे गये ये शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। यथार्थ में कृषि और किसान का उत्कर्ष चौधरी साहब के जीवन का एक मिशन था और यह मिशन ऐसा था, जिससे देश गरीबी, बेकारी और विदेशों की निर्भरता से मुक्त हो सकता था। लेकिन दुर्भाग्य है कि हमारे नामधारी नेताओं की समझ में यह बात नहीं आई। इस देश का बुद्धिजीवी भी चौधरी साहब के योगदान को समझने में एक सीमा तक असफल रहा है। इसके विपरीत पॉलब्रास और टेरेन्स जे. वायरेज जैसे विदेशी विद्वानों ने चौधरी साहब की योग्यता और उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए उनके जीवन और कार्यों पर विस्तार के साथ लिखा है। निश्चय ही ये विद्वान् उन भारतीयों से भिन्न हैं जो अपने नेता का कृपा-पात्र बनने के लिए चौधरी साहब पर जातिवाद का आरोप लगाते या उनको कुलकों का नेता कहते थे।

गत पृष्ठों में कहा जा चुका है कि चौधरी साहब ने कृषि और किसान

की उपेक्षा को कभी सहन नहीं किया। वह उपेक्षा चाहे किसी मुख्यमंत्री की ओर से हुई हो और चाहे किसी प्रधानमंत्री की ओर से। इसी आधार पर, सन् 1959 में, डा. सम्पूर्णानन्द के मंत्रिमण्डल से चौधरी साहब ने त्याग-पत्र दिया था। इनके त्याग-पत्र से, उत्तर प्रदेश की सरकार को कितनी हानि पहुंची थी, इस विषय पर लखनउ से प्रकाशित कांग्रेस समर्थित 'नेशल हेराल्ड' ने अप्रैल 13, 1959 के अंक में जो कुछ लिखा था, उससे चौधरी साहब की नीति, कर्मठता एवं ईमानदारी की प्रशंसा होती है। पत्र के लेख का सारांश है—'चौधरी चरण सिंह का उत्तर प्रदेश की सरकार से बाहर जाना उत्तर-प्रदेश के प्रशासन तथा मि. सम्पूर्णानन्द की विशेष हानि है। वह एक योग्य, ईमानदार विचारक, कठोर परिश्रमी और एक ऐसे व्यक्ति के सहयोग से वंचित हो गये हैं, जो अपनी ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा के लिए विख्यात है, जबकि ऐसे लोग मुश्किल से मिलते हैं।' अखबार के सम्पादक आगे कहते हैं कि अनेक अवसरों पर हमारा चरण सिंह से मतभेद था और नीतिगत मामलों पर हमने उनकी आलोचना भी की थी, 'लेकिन अच्छे उद्देश्यों के प्रति उनकी निष्ठा, अपने कार्यक्षेत्र के विषयों के प्रति उनका ज्ञान और कर्तव्य के प्रति उनकी निष्ठा के सामने प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता।'

पॉल आर. ब्रास, अपनी पुस्तक 'फैक्शनल पॉलिटिक्स इन एन इंडियन स्टेट' जिसका प्रकाशन बम्बई स्थित ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस ने किया है, कहते हैं—'चौधरी साहब अपने कार्य और नीतियों की सच्चाई में अजेय तथा अधिक विश्वास रखते हैं, सत्ता पर बने रहने में नहीं। चौधरी साहब न तो मित्र बनाने का प्रयास करते हैं, न किसी के समर्थन पाने की कोशिश करते हैं, और वह अपने विरोधियों को भी विरोध का कोई मौका नहीं देते हैं।'[11] लेखक यह भी कहता है कि 'आज तक किसी ने उन पर (चौधरी साहब पर) अपने लिए भौतिक लाभ उठाने का दोषारोपण नहीं किया।'[12] यह एक ऐसी टिप्पणी है, जो सम्भवतः किसी राजनीतिक नेता के विषय में न की गयी होगी। सत्य यह है कि देश के अनेक बड़े नेताओं पर व्यक्तिगत तथा पारिवारिक स्वार्थपूर्ति के आरोप समय-समय पर लगाये जाते रहे हैं, पर चौधरी साहब पर ऐसे आरोप उनके घोर-विरोधी भी नहीं लगा पाये हैं।

'टाइम्स ऑफ इंडिया', बम्बई के स्थानीय संपादक के. सी. खन्ना ने भी चौधरी साहब के कतिपय गुणों की प्रशंसा मुक्तकंठ से की है। वह लिखते हैं—'इंदिरा गांधी के बाद देश में एक प्रकार से चरण सिंह अत्यंत महत्त्वपूर्ण

वह वर्ग गणना-प्रवीण तो निश्चय ही था और आज भी है, पर देश की यथार्थ प्रगति के स्रोत तथा आधारों से आज भी अपरिचित है। पीछे कहा जा चुका है कि देश की विदेशी मुद्रा का 60 प्रतिशत कृषि-क्षेत्र के निर्यात से आता है। जब कृषि-क्षेत्र विदेशी मुद्रा के भण्डार में, अन्यों की अपेक्षा अधिक योग देता है, तो उसके समुचित विकास की आधारभूमि तैयार न करने के दोष से न तो नेता को मुक्त किया जा सकता है और न उसके प्रशासनिक अधिकारी को। विदेशी-मुद्रा के भण्डार में ही अधिक योग देने का श्रेय कृषि-क्षेत्र को नहीं है, वरन् वह उद्योग-क्षेत्र के मुकाबले में अधिक रोजगार भी प्रदान करता है। यह बात, दैनिक जागरण, नई दिल्ली 17-3-1999 में प्रकाशित पूर्व प्रधानमंत्री देवगौड़ा के इन तथ्यों से सिद्ध होती है। उनके अनुसार उद्योगों से मिला रोजगार 36 प्रतिशत था और खेती से मिला 64 प्रतिशत।

चौधरी साहब इस तथ्य को भली प्रकार जानते थे। वह व्यावहारिक अर्थशास्त्री थे। यही कारण है कि आर्थिक दृष्टि से देश को सम्पन्न बनाने के लिए उनके पास नायाब फार्मूला था—खेती का विकास, घरेलू तथा लघु-उद्योगों का उत्कर्ष और बड़े उद्योगों को उन वस्तुओं के उत्पादन से दूर रखना, जिनका उत्पादन लघु-उद्योगों में होता है। देश के नेताओं ने, चौधरी की देशभक्ति प्रशासनिक कुशलता और ईमानदारी के कसीदे तो पढ़े हैं, पर राष्ट्र के उत्कर्ष के उनके फार्मूले पर ध्यान नहीं दिया है। फलतः देश गरीब है और दुनिया के गरीब देशों में भी उसका स्थान 128वां है। यह बात संयुक्त-राष्ट्र-संघ की विकास कार्यक्रमों की संस्था यू.एन.डी.पी. ने वर्ष 2000 की अपनी रिपोर्ट में कही है।[35]

चौधरी साहब जिस प्रकार गम्भीरता के साथ राष्ट्र के आर्थिक विकास के सही मार्ग के विषय में सोचते थे, उसी गम्भीरता के साथ प्रशासनिक ईमानदारी, दायित्वबोध और जनहित के विषय में भी विचार रखते थे। व्यक्ति के आत्मसंस्कार और राष्ट्र के उत्थान की दिशा में काम करने सक्रियता ही, उनकी सभ्यता तथा संस्कृति का मूलाधार है। हमारे नेताओं को, चौधरी साहब के चिंतन और कार्य की एकता से बहुत कुछ सीखने की जरूरत है। इसके अभाव में, वे अपने राष्ट्रीय दायित्व को पूरा करने में सफल नहीं हो सकते।

संदर्भ

1. चौधरी चरण सिंह, शिष्टाचार, पृ. 5
2. वही

3. वही, पृ. 3
4. वही, पृ. 156
5. वही, पृ. 157
6. कै. रणसिंह राणा, प्रथम किसान प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह, पृ. 75 (हिन्दी अनुवाद) ले. कर्नल चन्द्रसिंह दलाल।
7. सं. अजय सिंह, चौधरी चरण सिंह : विशिष्ट रचनाएं, भूमिका पृ. 2
8. वही, प्रस्तावना, पृ. 3
9. वर्ष 1999 का चरण सिंह स्मारक व्याख्यान, 19 अप्रैल 1999, पृ. 2
10. वही, पृ. 3
11. आर. के. हुड्डा, मैन ऑफ दि मासेज : चौधरी चरण सिंह, पृ. 13
12. वही
13. वही, पृ. 17
14. वही
15. धरापुत्र की स्मृति में, पृ. 2
16. वही, पृ. 7
17. वही, पृ. 11
18. वही, पृ. 13
19. गांव की ओर, सं. ओमपाल सिंह, पृ. 9
20. कादम्बिनी, वर्ष 17, अंक 10, पृ. 23
21. वही, पृ. 25
22. वही, पृ. 26
23. वही, पृ. 27
24. वही, पृ. 28
25. वही, पृ. 29
26. वही, पृ. 31
27. वही, पृ. 33
28. चौधरी चरण सिंह, उत्तर प्रदेश में कृषि-सुधार और कुलक वर्ग, पृ. 212
29. वही, पृ. 214
30. वही
31. जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी, संस्करण 1938, पृ. 516
32. वही
33. चौधरी चरण सिंह, उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार और कुल वर्ग, पृ. 220
34. वही
35. देखें, अमर उजाला, मेरठ, 7 जुलाई 2000

चौधरी साहब पर जातिवादी तथा कुलक वर्ग के समर्थक होने का आरोप और उसकी यथार्थ स्थिति

चौधरी साहब की योग्यता, अनुशासनप्रियता, गजब की ईमानदारी, चारित्रिक दृढ़ता, गहन देशभक्ति और अभूतपूर्व कार्यक्षमता को देखकर, जब बड़े-बड़े नामधारी लोग उनके सामने फीके पड़ने लग गए, तब अपने पारिवारिक या दलगत स्वार्थों को पूरा करने के लिए, उन्होंने एक नया हथकंडा अपनाया, ताकि उनको भारतीय राजनीति में अप्रासंगिक बनाया जा सके। वह हथकंडा था उनको जातिवादी घोषित करना अथवा कुलकों का हिमायती कहना। उन पर, जातिवादी होने का आरोप कांग्रेस के नेताओं ने लगाया था और कुलक उनको तथाकथित मार्क्सवादियों ने कहा था।

दोनों द्वारा लगाये गए आरोप तथा आरोप लगाने वालों के नीतिगत कार्यों के आलोक में, यह निश्चित कराना मेरा अभिप्रेत है कि क्या वास्तव में स्वर्गीय चौधरी साहब जातिवादी संकीर्णता से प्रभावित थे और क्या वह देश के आम आदमी के हित में काम न करके कुलकों (जमीदारों, भू-स्वामियों) के पक्षधर थे? इस आरोप का संक्षिप्त उत्तर तो यह है कि वह न तो जातीय संकीर्णता से ग्रसित थे और न कुलकों के हिमायती थे। अपने इस निष्कर्ष के विषय में कुछ प्रमाण देना नितान्त आवश्यक है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 16 फरवरी, 1951 को उत्तर-प्रदेश कांग्रेस-कमेटी की कार्यकारिणी की बैठक में चौधरी साहब ने प्रस्ताव रखा था कि 'कांग्रेस का कोई भी सक्रिय सदस्य किसी जातीय आधार पर बनी संस्थाओं या संगठनों से अपने को सम्बद्ध न करे।' इस प्रस्ताव का तीन महत्त्वपूर्ण कांग्रसी-नेताओं ने कड़ा विरोध किया था, फिर भी प्रस्ताव बहुमत से पास हुआ था।[1] यहां यह प्रश्न खड़ा होता है कि उक्त प्रस्ताव का रखने वाला जातीय संकीर्णता से ग्रसित था अथवा उसका विरोध करने वाले तीन व्यक्ति? उत्तर स्पष्ट है विरोध करने वाले कांग्रेस के कार्यकर्ता जातीय संकीर्णता के शिकार

थे, प्रस्तावक चौधरी साहब उससे मुक्त थे।

यहां उल्लेखनीय यह है कि उत्तर-प्रदेश कांग्रेस-समिति (पी. सी. सी.) के अनुसार 'कांग्रेसी व्यक्ति न तो किसी ऐसी संस्था का सदस्य होगा और न ही ऐसी किसी संस्था की कार्यवाही में भाग लेगा जो किसी जाति या जातियों तक ही केन्द्रित हो और न ही अन्य जातियों के बीच वैमनस्य फैलाने में भागीदार होगा।'[2] जातिवादी कौन : एक विश्लेषण का कथन है कि डा. सम्पूर्णानन्द जो उ.प्र. के शिक्षामंत्री तथा प्रमुख कांग्रेसी नेता एवं समाजवादी विचारक थे, न तो उक्त बैठक में शामिल हुए, न प्रस्ताव पारित कराने में योग दिया। वह चाहते थे कि इस प्रस्ताव पर दोबारा बहस हो।[3] फिर भी प्रस्ताव पास हुआ। इससे स्पष्ट है कि चौधरी साहब प्रस्ताव के प्रति निष्ठावान थे, पर कांग्रेसी-नेता नहीं। इस तथ्य का प्रमाण यह है कि सन् 1972 में, उ. प्र. की सरकार में मुख्यमंत्री होते हुए मुख्यमंत्री भी लखीमपुर खीरी में होने वाली ब्राह्मण-सभा में गए[4] थे। यही नहीं पं. पुरुषोत्तम दास टंडन ने कानपुर में एक खत्री धर्मशाला का उद्घाटन किया था।[5] बात अगर यहीं तक रहती तो उस पर नियंत्रण हो सकता था लेकिन चौधरी साहब पर जाटपन का आरोप लगाने वाले देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू भी जातीय तथा प्रान्तीय संकीर्णता से मुक्त न थे। 'जातिवादी कौन : एक विश्लेषण' का कथन है–'उनकी (अर्थात पंडित नेहरू की) इस चिंता को धन्यवाद, जिसकी वजह से श्री नेहरू के जमाने में एक भी कश्मीरी नवयुवक बेरोजगार नहीं रह सकता था। उन्हें कभी यह बात भी ध्यान में नहीं आई कि उन्हें उस संस्था की कार्यवाही में भाग नहीं लेना चाहिए, जिसकी सदस्यता केवल उनके अपने कश्मीरी पंडितों के समुदाय तक ही सीमित रही[6] हो।' दूसरी ओर चौधरी साहब थे जो कभी जाट महासभा के अधिवेशनों में शामिल नहीं हुए।

पंडित नेहरू ने तो चौधरी साहब के विषय में जाटपन की बात कही थी, श्रीमती गांधी ने तो स्पष्ट शब्दों में, उन पर जातीय संकीर्णता का आरोप लगाया था। आपने 1980 में एक स्थानीय पत्रिका प्रोब को दिए गए अपने साक्षात्कार में कहा था 'हाल में चौधरी चरणसिंह द्वारा केन्द्रीय मंत्रीमण्डल में महत्त्वपूर्ण पद पर रहने के बाद राष्ट्रीय जीवन में हर क्षेत्र में जातीयता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गई।'[7] श्रीमती गांधी को इतने पर ही संतोष नहीं हुआ और उन्होंने पूरी जाट जाति पर आरोप लगा दिया। उन्होंने 'पायोनियर' 22-8-1980 में, मुरादाबाद में 13 दिसम्बर को हुए साम्प्रदायिक संघर्ष के लिए आरोप जाटों के सिर मढ़ दिया।[8] इसके पीछे सच्चाई कुछ न थी, केवल चौधरी साहब से सन् 1972 की

मजदूर चाहिए।'[22] चौधरी साहब का यह तर्क, निश्चय ही देश के अधिक लोगों को रोजगार देने के सिद्धांत का पक्षधर है। यही कारण था कि वह बड़े उद्योगों के विरोधी थे और लघु उद्योगों के समर्थक। इसका तात्पर्य यह भी न था कि वह निजी क्षेत्र के विरोधी थे। उनका कथन था कि 'मैं निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने के पक्ष में हूं।'[23] वह राष्ट्रीयकरण के पक्ष में भी न थे[24] और न विदेशी-प्रेम के भी।[25] वह स्वदेशी के पक्षधर थे और गलती तथा जुर्म करने वाले को कठोर दण्ड देने के हामी थे।[26] वह तानाशाही के विरोधी थे और नेताओं द्वारा पुलिस कर्मी को गलत आज्ञा देने को बुरा मानते थे। उनका कहना तो यहां तक था कि 'गलत आज्ञाएं मानी न जायें।'[27] उनका यह सुझाव कुछ लोगों को अनुशासनहीनता को बढ़ावा देने वाला प्रतीत हो सकता है, यथार्थ में ऐसा नहीं है। कभी-कभी ऐसा होता कि राजनीतिक नेता पुलिस को या अपने अधीनस्थ अधिकारी को, अपने स्वार्थों से प्रेरित होकर, नीति तथा समाज-विरोधी आदेश दे दिया करते हैं। यदि ऐसे आदेशों का पालन कर दिया जाता है, तो उससे समाज तथा राष्ट्र का अहित हो जाया करता है और लोकतंत्र पर लांछन लग जाता है। ऐसी अवस्था में, चौधरी साहब अधिकारी को अपनी आत्मा की आवाज सुनने का परामर्श देते हैं, क्योंकि शुद्ध आत्मा की आवाज कभी गलत नहीं होती। राजा जनक के एक प्रश्न—जब सूर्य, चन्द्र और वाणी आदि लुप्त हो जाये तो मनुष्य के पास कौन-सा दीपक रह जायेगा? के उत्तर में ऋषि याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया था—'राजन आत्मा सब दीपकों का दीप है। वह दीपक कभी बुझता नहीं (ऋग्वेद) इसका सीधा-सा अर्थ है कि जब व्यक्ति या दलीय स्वार्थों का अंधकार फैल जाये तो आत्मा रूपी दीपक से सत्य को देख लेना चाहिए। चौधरी साहब ने, सदैव आत्मा रूपी दीपक के प्रकाश में समाज तथा राष्ट्रहित का मार्ग खोज निकाला था। वह मार्ग, चाहे प्रदेश के मुख्यमंत्री के हितों के विपरीत जाता हो अथवा देश के प्रधानमंत्री के। लेकिन वह, बहुसंख्यक समाज के हितों का सदैव पोषक रहा था और राष्ट्र को सबल बनाने वाला भी।

आत्मा रूपी दीपक के प्रकाश में ही, आपने एक सिद्धांत का प्रतिपादन और भी किया था। वह सिद्धांत था—'सरकारी सेवाओं में किसान-संतान के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण का होना। कुछ लोगों को, इस मांग के पीछे कोई औचित्य नजर नहीं आयेगा। यथार्थ में यह लोकतंत्र की एक अनिवार्यता प्रतीत होती है। यह ठीक है कि लोकतंत्र में जनता के प्रतिनिधि शासन करते हैं, नीतियों का निर्धारण वे करते हैं, लेकिन उनका क्रियान्वयन करने वाला अधिकारी वर्ग

होता है और वह अधिक मात्रा में शहरी क्षेत्र का, अथवा बुर्जुआ संस्कृति में पला व्यक्ति होता है। वह लगन तथा तत्परता के साथ योजनाओं का क्रियान्वयन नहीं करता। यही कारण है कि आजादी के पांच दशक बाद भी देश से गरीबी, भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता दूर करने वाली योजनाएं सफल नहीं हुई। योजनाएं बनती हैं, उनकी पूर्ति के लिए धनराशि का आबंटन होता है, लेकिन शायद ही कोई योजना अक्षरशः पूरी हुई हो? इसका कारण है योजना को मूर्त देने वाले हाथों का भ्रष्ट, राष्ट्रहित से अलगावित तथा आत्मकेन्द्रित होना। शहरी क्षेत्र के लोगों की किसान तथा ग्रामीण क्षेत्र के लोगों के हितों के प्रति उदासीनता का एक उदाहरण देते हुए आप कहते हैं–'मैं सोचता हूं कि लोगों के विचार औसत तौर पर उनकी आय के स्रोतों पर निर्धारित होते हैं, यह बात तभी पूरी तरह स्थिर हो जाती है जब यह कहा जाता है कि पिछली पंजाब-विधान सभा में कांग्रेस पार्टी के सभी सदस्यों ने, जिनमें से लगभग सारे शहरी हितों या गैर-कृषि वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे, मौलाना अबुल कलाम आजाद के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद बंधक-भूमि-प्रत्यर्पण विधेयक और कृषि-विपणन-विधेयक का समर्थन करने से इंकार कर दिया था।'[28]

विलियम ऐग्ले द्वारा जुलाई 1923 में 'ब्रिटिश एग्रीकल्चरल ट्राइब्यूनल ऑफ इन्वेस्टिगेशन में दिये गये ज्ञापन 'कंशीडरेशन ऑफ नेशनल हेल्थ' से उद्धृत करते हुए आपका कथन है–'लंदन में देहाती आबादी के लगातार आगमन पर अपने अध्ययन के फलस्वरूप सर नियुलिन स्मिथ ने आधी शताब्दी से ज्यादा पहले यह बताया था कि कुल मिलाकर वे लोग शरीर के बहुत ही तगड़े हैं जो देहात को छोड़कर शहर आते हैं।'[29] और भी 'देहाती तत्व का प्रवाह जारी रहने से लंदन स्वस्थ और तगड़ा हुआ[30] है।' जो तथ्य लंदन के लिए खरा है, वह कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली के लिए खरा क्यों न होगा? फिर शहरी लोग, देहात के लोगों को गंवार मानते आये हैं और प्रत्येक स्तर पर, उनके हितों का शोषण करते रहते हैं। इसी शोषण की ओर संकेत, पंडित जवाहरलाल नेहरू ने, इन शब्दों में किया है–'खेती से ताल्लुक रखने वाले सभी वर्ग जमींदार, किसान और काश्तकार सभी बोहरों के, जो मौजूदा हालातों में गांवों की आदिमकालीन व्यवस्था का एक आवश्यक कार्य कर रहे थे, फंदे में फंस गये।'[31] अधिकांश ये बोहरे शहरी थे, या बाद में आकर शहरों में रहने लगे थे। पंडित जी आगे कहते हैं--'इस काम से साहूकारों ने खूब निजी फायदा उठाया और उनका जाल जमीन पर और जमीन से सम्बंध रखने वाले सभी लोगों पर फैल गया।'[32]

यह कथन विचारक, दार्शनिक और समाजवादी विचारधारा के नेहरू का है, लेकिन जब वह प्रधानमंत्री की कुर्सी पर लगभग दो दशकों तक बैठे रहे तो अपने अत्यंत प्रिय सिद्धांतों को, शहरी प्रशासक-वर्ग से लागू कराने में 75 प्रतिशत विफल रहे। वह लम्बे समय तक, विचार और कार्य के विरोधाभास की लहरों में बहते रहे। यह कार्य किया था, देहात के क्षेत्रों से आये, साथ ही विचार और कर्म के समुचित संतुलन से परिपूर्ण दीनबंध छोटूराम ने पंजाब में, राजस्थान में नाथूराम मिर्धा ने और उत्तर-प्रदेश में चौधरी चरण सिंह ने। यदि ये तीन व्यक्ति, राजनीति के क्षितिज पर उभर कर न आये होते तो देश के बहुत बड़े भाग का किसान कांग्रेस की साहूकार लॉबी का शिकार होकर मजदूर बन गया होता और उसकी भूमि पर साहूकारों के फार्म बने गये होते।

चौधरी साहब की दृष्टि में, महत्त्व परिश्रमी, ईमानदार और आवश्यकता के समय राष्ट्र की रक्षा में प्राणों की आहुति देने वाले किसानों का था, राष्ट्रीय संकट के समय में भी, अपने आर्थिक हितों की, रोटियां सेंकने वालों का नहीं। यही कारण है कि वह निःसंकोच एक कटु सत्य का उद्‌घाटन करते हैं। उनकी मान्यता है–'देश के सार्वहनिक क्षेत्र में शहरी तत्व का प्रभुत्व है। किसान की आवाज वहां सुनी नहीं जाती, जबकि वह भारतीय जनता के लगभग पचहत्तर प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करता है। ग्रामीण क्षेत्रों से आये कुछ कांग्रेस जनों को छोड़ यहां हर आदमी किसान की मुंह से सेवा करता है। कोई भी उनके हितों की चिंता करने वाला नहीं है।'[33]

चौधरी साहब के इन शब्दों का समर्थन रायल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर के एक सदस्य के विचारों से होता है। वह स्वीकार करते हैं कि शहरी लोग, देश के बहुसंख्यक किसानों का शोषण करते हैं। यही बात, तत्कालीन मुख्यमंत्री पं. गोविन्द बल्लभ पंत ने कही थी–'सारे विभाग यहां हवाबंद डिब्बे की तरह हैं, हर विभाग एक कृत्रिम वातावरण में काम कर रहा है और बेचारा गरीब ग्रामीण कुछ ऐसे लोगों की परस्पर-विरोधी अपीलों से हैरान है जो वास्तव में न तो उसके खुद के जीवन में भागीदारी रखते हैं और नहीं उसकी सेवा की भावना से अनुप्राणित हैं। आपको यह अहसास करा देना है कि आप और हम उसके शुभचिंतक है और उसकी सेवा के इच्छुक[34] हैं।'

यथार्थ में, पं. गोविन्द बल्लभ पंत के ये शब्द, चौधरी साहब के चिंतन और प्रस्ताव पर मोहर लगाते हैं। सच यह है कि हर समझदार तथा लोकहित के साथ जुड़ा व्यक्ति चौधरी साहब की बात का समर्थन करेगा। यदि देश के

भाग्यविधाता नेताओं ने मार्च 1947 में कहे गये चौधरी साहब के विचारों को महत्त्व देकर किसान-संतानों के लिए पचास प्रतिशत आरक्षण कर दिया होता तो किसान आत्महत्याएं करने पर विवश न होता। हवाबंद कमरे में बैठे मंत्री को, जैसा उसका सचिव संकेत करता है, वह वैसा ही बोल उठता है। प्रश्न चाहे किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी का हो अथवा कृषि-उत्पादों के अन्तर्राज्यीय आवागमन का। मंत्री महोदय पंडित पंत और चौधरी साहब के विचारों पर धूल डालकर, दोनों पर प्रतिबंध लगाने की सहमति व्यक्त कर देते हैं, लेकिन उन्होंने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि औद्योगिक उत्पादों को यह छूट क्यों दी जाती है? जबकि सच्चाई यह है कि उद्योगों से न तो देश के बेरोजगारों को अधिक काम मिलता है और न उनके निर्यात से सरकारी खजाने में विदेशी मुद्रा आती है। पूर्व प्रधानमंत्री देवगौड़ा के दैनिक जागरण, नई दिल्ली में 17-3-1999 में प्रकाशित विचारों से इस बात की पुष्टि होती है कि उद्योग-धंधों से लोगों को मिला रोजगार केवल 36 प्रतिशत है और खेती से 64 प्रतिशत। अमर उजाला 7-12-1998 में पृष्ठ 3 पर प्रकाशित एक कथन के अनुसार, इस समय विदेशी मुद्रा का 60 प्रतिशत कृषि-उत्पादों के निर्यात से मिलता है। फिर भी कृषि-क्षेत्र को न तो समय पर पानी मिलता है, न समुचित मात्रा में बिजली, न उसको पानी देने वाली नहरों की सफाई होती और न उसको अन्तर्राज्यीय व्यापार की सुविधा ही मिल पाती है।

केवल सुविधाओं के अभाव के कारण ही कृषि-क्षेत्र, भयंकर परिस्थितियों से ही नहीं गुजर रहा है, वरन् विदेशी दबाव तथा प्रभाव के कारण अपनायी गयी आर्थिक उदारीकरण एवं विश्व-व्यापार की नीति के कारण भी बुरी तरह त्रस्त है। 'दैनिक जागरण' नई दिल्ली के दिनांक 2-3-2000 के अंक में प्रकाशित देवर्षि शर्मा के मतानुसार देश की 85 प्रतिशत आबादी आर्थिक सुधारों का बोझ ढो रही है। 'दैनिक जागरण' 19 मई, 2000 के एक अन्य समाचार के अनुसार उदारीकरण का रास्ता अपना कर देश के औद्योगिक घरानों को लाभ पहुंचा जा रहा है। 22 औद्योगिक घरानों का कारोबार 1957 में 312-63 करोड़ से बढ़कर 1977 में 1,58004.72 करोड़ हो गया था। इसके ठीक विपरीत स्थिति लघु-उद्योगों में लगे लोगों व खेती से जुड़ी जनता की है। एक का पेट फूल रहा है, दूसरा भूखों मर रहा है।

यह सब इसलिए हुआ कि अंकों के आधार पर देश की प्रगति और अगति की गणना करने वाले लोग प्रायः उच्चवर्गीय बुद्धिवादी घरों से आते रहे हैं।

पराजय का बदला लेना था और भारतीय राजनीति में उनको अप्रासंगिक बनाना था।

यथार्थ में, न चौधरी साहब कभी जातिवादी मनोवृत्ति के आदमी रहे थे और न उनकी जाति। इसके प्रमाण, भारतीय इतिहास के पन्नों में सुरक्षित हैं। इनकी अर्थात् चौधरी चरणसिंह की जाट-जाति ने इस देश की रक्षा और प्रगति में अनुपमेय योग दिया है और जिस जाति में, श्रीमती गांधी ने जन्म लिया था, वह उस समय भी दुम दबाये बैठी थी, जब अलाउद्दीन खिल्जी ने उन पर जजिया लगा दिया था और औरंगजेब ने 29 मई 1679 से लेकर 2 जनवरी 1705 तक, देश के अधिकांश शहरों में बने मंदिरों को तुड़वा दिया था। 1644 में, उसने अहमदाबाद के चिंतामणि के हिन्दू मंदिर में गोहत्या कराई थी।[9] यहां तक कि स्वामिभक्त आमेर नरेश, जयसिंह की राजधानी के सारे मंदिर तुड़वा दिए थे[10]। लेकिन किसी मठाधीश, पुजारी, शंकराचार्य और राजा के ब्राह्मणमंत्री एवं पुरोहित का साहस नहीं हुआ कि वह इसका विरोध करता। उसका विरोध किया था, चौधरी साहब की ही जाति के एक किसान नंदराम ने सन् 1660 में, गोकुलराम ने सन् 1666 में, राजाराम ने सन् 1685 में और चूरामन ने तो आठ वर्ष तक, दिल्ली की मुगल-सेवा और आमेर नरेश जयसिंह को छकाया[11] था। के. आर. कानूनगों की मान्यता है कि 'राजाराम ने थोड़े से ही दिनों में आगरा जिला में मुगलों की सत्ता को समाप्त कर दिया।'[12] ये दो तीन उदाहरण इस बात के प्रमाण है कि लोकविरोधी मुगल-सत्ता को उखाड़ फेंकने में जाट-जाति की प्रमुख विशेषता रही है। इसकी समता श्रीमती गांधी की जाति में नहीं मिलती। उसने देश के साधनों का भोग तो किया है, पर उसके लिए खून नहीं बहाया। देश की रक्षा में प्राणों की बलि देने वाले जाटों का एक उदाहरण और भी ऐसा है, जिसकी समता में नेहरू परिवार की कोई गिनती नहीं होती। वह उदाहरण है, दो सौ वर्षों तक, अरबों के आक्रमणों को रोकने वाला। अरब में खलीफाओं का प्रभाव बढ़ते ही। उनकी दृष्टि भारत की ओर लग गई थी। बोलन दर्रे के पास कींकन क्षेत्र में बसे जाटों ने उनके आक्रमणों को रोका था।[13] यही नहीं, इतिहास में जाटों की देशभक्ति के अनेक उदाहरण मौजूद हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि उन्होंने देश की रक्षा में महान् योग दिया है, लेकिन श्रीमती गांधी की कांग्रेस ने देश को भ्रष्टाचार, गरीबी और बेरोजगारी के अलावा आपातकालीन स्थिति भी दी थी।

दूसरी ओर चौधरी साहब थे, जिन्होंने देश और समाज को जातीय संकीर्णता से मुक्त करने के लिए सन् 1954 में, प्रधानमंत्री पं. नेहरू को लिखा था—'कि

संविधान में इस आशय का संशोधन किया जाये कि राज्य या केन्द्र में भविष्य में किसी भी नौजवान को 'राजपत्रित पद' पर उस समय तक प्रविष्ठ नहीं किया जायेगा जब तक उसने अपनी जाति के बाहर किसी अन्य जाति में (या अपनी मातृभाषा के अलावा किसी अन्य भाषा से) विवाह किया होने या करने की इच्छा व्यक्त न की हो।' लेकिन पंडित जी इस सुझाव से सहमत नहीं[14] हुए। यही नहीं, चौधरी साहब ने सन् 1939 में कांग्रेस-विधायक-दल के समक्ष एक प्रस्ताव रखा था–'जो हिन्दू प्रत्याशी किसी शैक्षणिक संस्था या लोकसेवा में प्रवेश प्राप्त करे उससे जाति, के बाबत कोई जांच न[15] हो।' चौधरी साहब ने 1949 और 1933 में जातिवाद के भीषण प्रकोप से बचने के लिए, मुख्यमंत्री पं. गोविंद वल्लभ पंत को सुझाव दिए थे कि जाति के नाम पर चलने वाली शैक्षणिक संस्थाओं की सहायतार्थ अनुदान नहीं दिया जाना चाहिए। लेकिन पंत जी ने कोई ध्यान नहीं दिया और डा. सम्पूर्णानन्द ने तो विरोध भी किया।[16] इस तथ्य से, सिद्ध होता है कि चौधरी साहब जातिवादी बुराई को मिटाना चाहते थे और पंत जी उसके प्रति गंभीर न थे। यह काम आपने बाद में किया, जब अपने एक आदेश से ही शिक्षा संस्थाओं के जाति आधारित नामों को परिवर्तन करा दिया और उनके आदेश के विपरीत, किसी से तथा कहीं से, कोई विरोधी स्वर नहीं उठा। यह था चौधरी साहब का जातिवाद-विरोधी स्वर।

जहां तक प्रश्न मुरादाबाद में हुए साम्प्रदायिक दंगा और उसमें जाटों का हाथ होने का है, जैसा कि श्रीमती गांधी का आरोप था, इस संबंध में, 'जातिवादी कौन : एक विश्लेषण' की मान्यता है कि उस समय, मुराबाद में लगी पी. ए. सी. में राजपूत और ब्राह्मणों का प्रतिशत 67 था और जाटों का 3। इनको भी दंडित करके अन्यत्र भेज दिया गया था और मजिस्ट्रेट तो दंगाइयों के हाथों मारा भी गया था।[17] यथार्थ में, जब कांग्रेस के नेताओं को चौधरी साहब पर आरोप लगाने के लिए कोई तथ्य नहीं मिला तो उनको जातिवादी सिद्ध करने का प्रयास किया गया, जो स्वयं अपनी मौत मर गया था।

'जातिवादी कौन : एक विश्लेषण' के लेखक ने शीर्षस्थ राजनीतिक एवं प्रशासनिक अधिकारियों, उत्तर-प्रदेश तथा हरियाणा सरकारों में सचिवों/उपसचिव/अबर सचिव (प्रतिनियुक्ति शामिल) तथा अन्य प्रशासनिक अधिकारियों की सूची देकर सिद्ध कर दिया है कि इन स्थानों पर सर्वाधिक संख्या ब्राह्मणों की थी और कहीं-कहीं तो 50 प्र. से भी अधिक थी।[18] इसी प्रकार 1952 से लेकर 1970 तक के सांसदों की सूची भी दी गई है। इनमें भी औरों की अपेक्षा ब्राह्मणों

की संख्या अधिक[19] थी। इसका सीधा-सा अर्थ यह है कि पंडित नेहरू और श्रीमती गांधी के संरक्षण में ब्राह्मण जाति के लोगों को ही अधिक प्रत्याशी बनाया गया था। जातिवादी कौन के विश्लेषक की धारणा है कि भारत में 13 भाषाएं 3400 जातियां और बिरादरी हैं। ये सब राष्ट्रीयता की भावना में बाधक रही हैं। अतः इनका परस्पर मिल कर एक हो जाना, राष्ट्र एवं समाज के लिए हितकर पहले भी था और आज भी है। देखने में यह आता है कि चौधरी साहब इन सब को एक करने के पक्ष में थे और कांग्रेस का ब्राह्मण-नेतृत्व इस ओर से उदासीन था। यह उदासीनता उनकी सकीर्णता की ओर संकेत करती है, देशभक्ति की ओर नहीं।

चौधरी साहब ने तो ऋषीकेश में छूआछूत विरोधी एक सम्मेलन आयोजित करके इस रोग के निदान के लिए तीन सूत्री फार्मूला प्रस्तुत किया[20] था। चौधरी साहब, अन्य लोगों की तरह जातीय संकीर्णता के निवारण की बात ही नहीं करते थे, वरन् एतत्विषयक अपने विचारों को ठोस रूप भी देते थे। इसका प्रमाण है, एक योग्य तथा ईमानदार गैर-जाट वकील विशंभर सिंह को लोकसेवा-आयोग का अध्यक्ष बनाना तथा अपने गृहमंत्री के काल में एक ईमानदार तथा कुशल प्रशासक चतुर्वेदी ब्राह्मण को दिल्ली का पुलिस कमिश्नर बनाना। जबकि एक अन्य जाति के मुख्यमंत्री ने लोक-सेवा-आयोग तथा आयोग के अन्य पदों पर अपने जाति के लोगों को ही बिठाया था। यथार्थ में, चौधरी साहब अपने कथन तथा कर्म से जातीय संकीर्णता विरोधी थे। बच्चियों की शादी तथा घरेलू सेवक रखने तक में यह तथ्य सत्य है।

हमारे देश के, कुछ मार्क्सवादी विचारकों ने, मार्क्स के सिद्धान्तों को, भारत की सामाजिक तथा औद्योगिक परिस्थितियों को समझे बिना, भारत पर लादने की कोशिशें की थीं। ऐसे ही लोगों को, चौधरी चरणसिंह कुलकों के नेता दिखाई पड़ने लगे थे। यथार्थ में, यह विचारकों का दृष्टिदोष था, चाधरी साहब की कोई कमी नहीं। मार्क्स ने योरोप की परिस्थितियों तथा वहां के औद्योगिक संस्थानों में लगे तथा शोषण के शिकार मजदूरों को संगठित होकर क्रान्ति के लिए तैयार रहने का आह्वान किया था। उसका नारा था–'वर्कस आफ द वर्ल्ड यूनाइट' अर्थात् संसार के मजदूर एक हो जाओ। उनका यह नारा, योरोप के लिए सार्थक था, भारत के लिए नहीं, कारण योरोप में मजदूरों की संख्या अधिक थी। उनको संगठित करके मिल मालिकों द्वारा होने वाले शोषण से उनको बचाया जा सकता था, लेकिन भारत में संख्या किसानों की अधिक थी, जो जमीदारों से लगान

पर भूमि लेकर जोतते-बोते थे और जमीदार लगान वसूल करने पर भी वसूली की रसीद उनको देते न थे और तीन साल बाद लगान न देने के आरोप में, उनको भूमि से बेदखल कर दिया करते थे। जमीदार, किसानों का शारीरिक तथा आर्थिक शोषण भी किया करते थे। यही कारण था कि भारत में आंदोलन किसान करता था। वह जमीदारों के शोषण से मुक्त होने के लिए आन्दोलन करता था।

भारत का किसान आंदोलनकारी था। वह बहुमत में भी था और शोषण का शिकार भी अधिक था। यदि हम मुगल सम्राट अकबर के शासन पर नजर डालें तो पायेंगे कि आगरा-मण्डल के किसानों ने सम्राट अकबर के, नील की खेती के ईजारेदारी वाले आदेश का पालन न करके, अपने खेतों से नील के पौधे उखाड़ कर फेंक दिए थे।[21] उनकी शक्ति, साहस और क्रान्तिकारी चेतना का स्वर इतना प्रबल था कि सम्राट द्वारा सैनिक कार्यवाही करने पर भी उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और सम्राट को, अपना आदेश वापिस लेना पड़ा।[22] इससे भी पहले, भी मेरठ-मण्डल के किसानों के संगठन 'सर्वखाप पंचायत' ने 1191 में, एक सभा करके निश्चित किया था कि पंचायत अपने क्षेत्र के असहायों की रक्षा करेगी।[23] सन् 1197 के अपने प्रस्ताव में पंचायत ने सुल्तान कुतुबुद्दीन द्वारा लगाये गए जजिया का विरोध किया था और उसके विरोध का परिणाम हुआ था, सुल्तान द्वारा जजिया कर को हटा लेना।[24] इसी तरह के प्रस्ताव उक्त पंचायत द्वारा 1245 ई. में सुल्तान नसीरुद्दीन के शासन के विरोध में, 1297 में अलाउद्दीन खिलजी के जजिया लगाने के विपरीत किए[25] थे। खिलजी के प्रधानमंत्री मलिक काफूर ने प्रस्तावों को स्वीकार करके किसानों की शक्ति को स्वीकार किया था।[26] यदि भारत में अंग्रेजों के आगमन और प्रशासन कालीन शोषण की गतिविधि पर नजर डाली जाय तो उनके शासन को चुनौती देने वाले भी किसान अधिक थे। सन् 1857 की क्रान्ति में, किसानों तथा उनकी संतान सिपाहियों की क्रान्तिकारी भूमिका अधिक[27] थी।

1907 में पंजाब के किसानों ने, सरदार अजीत सिंह के नेतृत्व में, अंग्रेजी राज्य के कॉलानी एक्ट के विरोध में सफल आंदोलन किया था।[28] इससे पहले 1819 में मध्य-भारत के भीलों ने भयंकर संघर्ष किया था। 1855-56 में संथालों ने इस बात पर शक्तिशाली विद्रोह किया था कि उनसे पुश्तेनी जमीन भू-स्वामियों द्वारा छीन ली गई थी। संथाल-किसानों का साथ गैर-किसान संथानों अर्थात् ग्वाले, तेली तथा लुहारों ने भी दिया था। इन्होंने अंग्रेजों के यातायात के साधनों को

नष्ट कर दिया था। राजमहल और भागलपुर के बीच रेल का आवागमन भी बंद हो गया था। घोषित यह किया गया था कि कंपनी का राज्य खत्म हो गया है। क्रांतिकारी संथालों ने महाजनों और जमीदारों के विरुद्ध यह संघर्ष किया था। निलहे गोरों और जमीदारों ने मिलकर उनको खत्म किया था। उनके पशुओं तथा स्त्रियों को गायब कर दिया गया। छोटे-छोटे बच्चों तक को दण्ड दिया गया। यह काम किया गया था सेना के बल पर।[29] किसानों के शोषण तथा दमन के और तथ्य भी है।

सन् 1919 में खेड़ा के किसानों ने आंदोलन किया था। इसके नेता थे सरदार पटेल, इंदुलाल याजनिक, शंकरलाल पारीख और एम. एन. जोशी। आंदोलन सफल रहा था, उनकी सारी मांगे पूरी हो गई थीं[30]। चम्पारन का किसान-आन्दोलन 1917-18 का भारतीय राजनीति में विशेष महत्त्व था। 'चम्पारन का संघर्ष नील पैदा करने वाले अमानवीय और अनैतिक यूरोपीय मालिकों के विरुद्ध किसान-संघर्ष का प्रतीक था। मील के किसानों के साथ, राष्ट्रीय नेतृत्व ने अन्याय किया था। गांधी जी ने, किसानों के साथ किए गए अन्याय की रिपोर्ट विहार के सचिव को भेजी थी और उसको सार्वजनिक नहीं किया था। एच. एस. पोलक की मान्यता है कि यदि गांधी जी ने उस रिपोर्ट को सार्वजनिक किया होता तो पूरे देश में आग फैल गई होती।[31] लेखक की मान्यता है कि 'मोपलों के विद्रोह को भारतीय राष्ट्रीय नेतृत्व, विशेषकर महात्मा गांधी, ने सही परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा।

सन् 1920 से लेकर 1936 तक उत्तर-प्रदेश में निरंतर किसान-आन्दोलन होते रहे थे। इन आन्दोलन का एक मात्र कारण, जमीदारों द्वारा अनेक प्रकार के अमानवीय अत्याचार किसानों पर करना था और किसानों को कहीं से न्याय न मिलना भी था। पुलिस, कानून और अधिकारी जमीदारों के साथ थी और जमीदार तो अंग्रेजी-सरकार के शासकों की नाजायज संतान माने जाते थे। उ. प्र. में सबसे पहले 1919, 20, 21 में राय बरेली तथा फैजाबाद में किसान-आंदोलन हुए। इसमें आंदोलनकारी किसानों के साथ, राष्ट्रीय नेतृत्व उपेक्षित ही रहा। फलतः 1024 किसान गिरफ्तार किए गए और 108 को कड़ी सजायें दी गई।[32] अवध के किसानों ने अपना संगठन एकासंघ (एक्यूनियन) बनाकर जबर्दस्त आन्दोलन किया था। जिला आगरा में भी 1930-31 में आन्दोलन हुआ था, जो बड़ौदा-आन्दोलन के काम से जाना जाता है। बिहार और पंजाब में भी किसान-आंदोलन संगठित होते रहे थे।

तात्पर्य यह है कि पूरे भारत में, अधिकांश स्थानों पर, जमीदार तथा अंग्रेजी सरकार के अमानवीय अत्याचारों के विरुद्ध भारत का किसान आन्दोलन कर रहा था। उस समय, इस देश में कहीं भी मजदूर-आन्दोलन का अस्तित्व न था। इन आन्दोलित किसानों के प्रति कांग्रेस के नेताओं की विशेष सहानुभूति नहीं थी। इस का एकमात्र कारण था, कांग्रेस की प्रान्तीय कमेटी में जमीदारों तथा साहूकारों का बहुमत होना और उनके हितों के विपरीत, कांग्रेस-नेताओं का कोई निर्णय न लेना। इस संबंध में पीछे पं. नेहरू के विचारों को प्रस्तुत किया जा चुका है।

इतिहास का गम्भीर छात्र होने के कारण, चौधरी साहब भली प्रकार इस बात को जानते थे कि भारत पर साइरस के आक्रमण से लेकर अंग्रेजों के आगमन तक, यहां के किसानों ने आक्रान्ताओं का विरोध करने वाले देशभक्तों का सदैव साथ दिया है। यही नहीं, शाहबुद्दीन गौरी जैसे आक्रमणकारियों को तो मार भी डाला है। यहां के राजा-महाराज या तो आक्रमणकारियों से पिटे हैं या उनके डर से राजधानी छोड़कर भाग गए हैं, वहीं यहां के किसानों ने आक्रान्ताओं के दांत खट्टे किए हैं। अकबर से लेकर औरंगजेब तक और लार्ड लेक से लेकर लार्ड माउन्ट ब्रिटेन तक, यहां के किसानों ने, अपने क्रान्तिकारी तेवर दिखाए हैं। उन्होंने ही अत्याचार, अन्याय और शोषण का विरोध किया है। उनको इस बात का भी ज्ञान था कि भारत में अभी तक वह मजदूर पैदा नहीं हुआ है, जो क्रान्ति का मुख्य आधार होता है और अन्य महाद्वीपों में जिसने अपने आन्दोलन द्वारा सरकारों को ध्वस्त किया है। यही कारण है कि चौधरी साहब ने, कानून के माध्यम से, क्रान्तिकारी किसान को, बहुमुखी शोषण से बचाने के लिए, जमीदारी-उन्मूलन-कानून बनाया तथा उसको पास कराके, कठोरतापूर्वक लागू कराया। इस कानून से, जो लोग लाभान्वित हुए थे, वे छोटे-छोटे किसान थे, बड़े-बड़े फार्मों के मालिक नहीं। वह तो, फार्मों और बड़े-बड़े फलोद्यानों के भी विरोधी थे और आपने श्रीमती सुचेता कृपलानी तथा अन्यों की उस योजना का भी विरोध किया था, जिसमें फलोद्यानों के नाम पर, बड़े-बड़े फार्म बनाने की योजना थी और वह भी किसानों से जमीन छीन कर।[33]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि चौधरी साहब कुलक अर्थात् बड़े-बड़े फार्मों के मालिकों, बड़ी-बड़ी जमीदारों के स्वामियों के विरोधी थे, समर्थक नहीं। अतः यह कहना प्रासंगिक होगा कि भारतीय-समाज की परिवर्तन-प्रक्रिया को न समझने वाले तथा माकर्स के अंधे अनुयायियों द्वारा उन पर कुलक वर्ग के समर्थन का

आरोप न केवल बेबुनियाद है, वरन् मार्क्सवाद की गलत समझ का परिणाम भी है।

देश की अधिकांश आबादी वाले वर्ग किसान को लाभ पहुंचाने के साथ-साथ देश में खाद्यान्नों के पर्याप्त उत्पादन के लिए भी जमीन को जोतने तथा बोने वाले को ही जमीन का मालिक बनाना आवश्यक इसलिए था कि मालिक की हैसियत से जमीन के साथ किसान का लगाव होगा और वह जी तोड़ मेहनत करके उत्पादन बढ़ायेगा। यह कार्य वह किराये पर जमीन लेकर खेती करते समय करने की मनोदशा में नहीं होता। फिर भी, 'जनता की नजर में चरणसिंह को लांछित करने के लिए अनेक पत्रकारों और राजनीतिज्ञों ने उन्हें 'कुलकों' या धनी किसानों का मित्र कहते हुए उनकी निंदा की।[33] 'कुलक' शब्द के ऐतिहासिक संदर्भ पर प्रकाश डालते हुए आमुख में कहा गया है 'रूसी भाषा मं 1917 की क्रान्ति से पहले, 'कुलक' शब्द से एक ऐसे बेईमान देहाती-व्यापारी का बोध होता था जो अपने श्रम से नहीं।' किसी और के श्रम से धनवान होता था[34]। लेकिन भारत का किसान न तो बेईमानी से कमाता था, न दूसरे की कमाई खाता था और न सूदखोरी से रुपया जमा करके ब्याज कमाता था। यथार्थ में वह भारतीय 'कुलकों' से शोषित था और चौधरी साहब ने जमीदारां को खत्म करके तथा किसान को जमीन का मालिक बना कर, भारत के बहुसंख्यक वर्ग का, युगान्तकारी हित किया था। देश के बहुसंख्यक छोटी-छोटी जोतों के किसानों का हित करने वाला व्यक्ति लोक-हितैषी होता है, कुलकों का हिमायती नहीं।

यथार्थ में, उत्तर-प्रदेश में लागू किए गए भूमि-सुधार महान् क्रान्तिकारी थें। उनकी समता, न केवल भारत के ही अन्यप्रदेशों में मिलती है, संभवतः विश्व में भी नहीं मिलती। चौधरी साहब द्वारा युग-युग से शोषित काश्तकारों को जमीदार तथा साहूकारों के शोषण से बचाने के लिए जो भूमि-सुधार किए थे, उनके विषय में कृषि-विशेषज्ञ बुल्फ लेडजिंस्की की मान्यता है–'मद्रास और आन्ध्र-प्रदेश में भूमि-सुधार कानून अस्थायी और कामचलाऊ ढंग का है और व्यापक कानून अभी बनाया जाना है। बिहार में अभी तक कुछ संशोधनों के साथ 1885 का टैनेन्सी एकट ही लागू है, जो पूरी तरह से अपर्याप्त है। पंजाब में लागू कानून बहुत ही दोषपूर्ण है तथा इसमें पूरे फेरबदल की जरूरत है। सिर्फ उत्तर प्रदेश में ही एक सुविचारित और व्यापक कानून बनाया गया तथा अमल में लाया गया है।'[35] आगे, वुल्फ लैडजिंस्की भारत के कृषि-सुधार काननों के अभावों पर टिप्पणी करते हुए, चौधरी साहब द्वारा बनाये, पास कराये, लागू किए कानून की प्रशंसा इन शब्दों में करता है–'भारत में कृषि-सुधार-कानून

काफी गतिहीन रहा है, किंतु उत्तर प्रदेश में इसे चुस्ती से अमली रूप दिया गया और महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की गई। इससे यही एक सीख मिलती है कि जहां कर डालने की इच्छा होती है, वहां इसे किया जा सकता है।'[36]

सारांश यह है कि चौधरी चरणसिंह जी ने, भारत के महान् क्रान्तिकारी वर्ग किसान को भू-स्वामियों, उनके पक्षधर प्रशासकों और सूदखोर महाजनों के अत्यन्त क्रूर, अमानवीय और अत्याचारी शोषण से मुक्त किया था। खेतिहर किसानों को जमीन का मालिक बनाया था और बाद की सरकार द्वारा सीरदार किसानों से जमीन छीनकर बड़े फार्म तथा फलोद्यान बनाने के इरादों को समाप्त किया था। किसानों के शोषण की कथाओं से देश का इतिहास और साहित्य भरा पड़ा है। चौधरी साहब ने, उसको समाप्त कर दिया और उत्तरप्रदेश के किसानों को स्वाभिमान के साथ जीवनयापन करने का अवसर दिया। आज पश्चिमी उत्तर-प्रदेश सम्पन्न और समृद्ध है तो उसके मूल में यहां के किसानों का परिश्रमी होना तो है, लेकिन उस परिश्रमी समाज को सही रास्ता देने वाले चौधरी साहब थे।

गत पृष्ठों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चौधरी चरण सिंह कुलकों के नेता न थे। लेकिन वह जिस कांग्रेस के अंग थे, वह जमीदार और पूंजीपतियों की समर्थक अवश्य थी। इसका पहला प्रमाण कांग्रेस-वर्किंग-कमेटी में किसानों का कोई प्रतिनिधि न था। उत्तर प्रदेश की समिति में किसानों के स्थान पर, जमीदार वर्ग के लोग सदस्य थे। पं. जवाहरलाल नेहरू के विचारों को पीछे उद्धृत किया जा चुका है। दूसरे, कांग्रेस के सर्वेसर्वा गांधी जी थे। वह किसानों के शोषकों का विरोध करने के लिए तैयार न थे। उनका ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त कहता है कि समस्त पूंजी समाज की है, जिसका उस पर अधिकार है, वह केवल उसका संरक्षक है, मालिक नहीं। लेकिन उनके परम भक्तों ने, उनके इस सिद्धान्त को कभी स्वीकार नहीं किया और वे सम्पत्ति के मालिक बने, उसका भोग करते रहे और जो उनके लिए सम्पत्ति का अर्जन करता था, उसका शोषण करते रहे। गांधीजी ने शोषित किसान और महनती वर्ग के समर्थन में, उनके शोषकों का विरोध कभी नहीं किया। इसका ठोस प्रमाण है कानपुर में गांधी जी और जमीदारों की बातचीत। 'इस बातचीत का पूरा वृतान्त महादेव देसाई ने प्रकाशित कराया था।'[37] आपने उस बातचीत का सारतत्व इन शब्दों में प्रकट किया है–'जमीदारों और पूंजीपतियों की सम्पत्ति उनसे छीनी नहीं जायेगी, वह प्रजा की धरोहर के रूप में उनके पास रहेगी।'[38] यहां यह सवाल उठाया जा सकता है कि अकाल या किसी अन्य विपत्ति के समय, समाज की उस

धरोहर से, लोगों के प्राणों की रक्षा की गई और क्या उस धरोहर का उपयोग जमीदारों तथा पूंजीपतियों ने समाज के अन्य वर्गों के शोषण के लिए नहीं किया? दोनों प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट हैं। उस धरोहर से न तो भूखों, रोगी तथा पीड़ितजनों की रक्षा की गई और न उनके शोषण की प्रक्रिया से उस दौलत को अलग रखा गया। ऐसी स्थिति में कांग्रेस का अंग रहते हुए भी चौधरी साहब ने, उत्तर-प्रदेश के किसानों को भूमि का मालिक बनाकर जमीदारों के भयंकर शोषण से मुक्त कर दिया। यही उनके कुलक-विरोधी होने का ज्वलन्त प्रमाण है।

कांग्रेसी नेतृत्व और उसकी गान्धीवादी विचार की आलोचना, जयप्रकाश नारायण ने अपनी पुस्तक 'ह्वाई सोशलिज्म'[39]। समाजवाद ही क्यों में की है। इस के निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'भारत में वर्गभेद और वर्ग-शोषण अंग्रेजी-राज्य में भी था और उससे पहले भी[40] था।' इसी संघर्ष को दूर रखने के लिए, कांग्रेसी नेतृत्व ने, भारत में हुए किसानों के आंदोलनों का कभी समर्थन नहीं किया, वरन् ऐसी परिस्थितियां भी पैदा की थीं कि किसान आंदोलन करने का साहस भी न कर सकें। पीछे के पृष्ठों में नील के गोरे जमीदारों के विरुद्ध तथा अवध के जमीदारों के भयंकर शोषण के विरुद्ध किसानों के आन्दोलनों के विषय में लिखा जा चुका है। यह कहा जा चुका है कि जमीदारों ने पुलिस से मिलकर किसानों को सजायें दिलाई, वर्षों तक उनको मुकदमों में उलझाये रखा और मोपला किसानों के तो बीवी, बच्चों का, गुण्डों द्वारा अपहरण भी कराया, फिर भी किसान आन्दोलन करते रहे। इससे किसानों की तो क्रान्तिकारी प्रकृति का प्रमाण मिलता है और कांग्रेस-नेतृत्व की पूंजी-समर्थक नीति का। चौधरी साहब ने, कांग्रेस की प्रतिक्रियावादी नीति की ओर ऊंगली उठाये बिना, किसानों के सबसे बड़े तथा भयंकर शोषक वर्ग जमीदारों को, एक ही कानून से खत्म कर दिया, इसका श्रेय कांग्रेसी नेतृत्व को, इसलिए नहीं दिया जा सकता कि ऐसा कार्य, कांग्रेस शासित अन्य प्रदेशों में नहीं हो पाया था। उत्तर-प्रदेश में भी जमीदारी उन्मूलन के बाद भी यह प्रयास किया गया था कि सीरदार किसान से भूमि छीनकर, बड़े-बड़े फार्म बनाये जायें। चौधरी साहब, एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिसने इस योजना को पूरा नहीं होने दिया था।

एक प्रकार से चौधरी साहब ने उस वर्ग को शक्तिशाली बना दिया, जिसने ब्रिटिश-साम्राज्य के भवन की जड़ें हिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। यथार्थ में ब्रिटिश-साम्राज्य, इस देश के राजाओं तथा जमीदारों पर टिका था। भारत के किसानों ने, सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन में महान्

क्रान्तिकारी भूमिका का निर्वाह किया था।[41] यदि अधिकांश राजाओं तथा जमीदारों ने, देश के गद्दारी करते हुए अंग्रेजों का साथ न दिया होता तो भारत लगभग एक सदी पहले स्वतंत्र हो गया होता। देश को गुलामी में रखने वाले, ज़मीदारों के शोषणकारी साधनों को समाप्त करके, चौधरी साहब ने महान् क्रान्तिकारी कदम उठाया था। ऐसी हालत में उनको कुलकों का समर्थक कहना बहुत बड़ी भूल है।

कांग्रेसी नेतृत्व ऊपर से समाजवाद का लवादा ओढ़े हुए था और वह भीतर से पूंजीपति वर्ग का समर्थक था। इस वर्ग के संबंध में, जयप्रकाश नारायण की मान्यता है—'भारत का पूंजीपति वर्ग गैर-क्रान्तिकारी साबित हुआ है, अर्थात् वह अपने नेतृत्व में एक जबर्दस्त साम्राज्यविरोधी आन्दोलन विकसित नहीं कर सका।'[42]

देश के जमीदारों तथा पूंजीपति वर्ग की, क्रान्तिविरोधी मान्यता को देखकर ही चौधरी साहब ने पहले कांग्रेस के भीतर रहकर जमीदारों को खत्म किया और फिर एक नयी क्रान्तिकारी भूमिका निर्वाह करने के उद्देश्य से कांग्रेस का दमन त्याग दिया और फिर देश के क्रान्तिकारी वर्ग को अधिक सशक्त बनाने के लिए दो उद्देश्य सामने रखे, एक गांव की ओर चलने का अर्थात् ग्रामीण जनता को सशक्त तथा समर्थ बनाने का और दूसरा किसान-संगठन खड़ा करने का, क्योंकि वह जानते थे कि भारत में क्रान्तिकारी वर्ग केवल यहां का किसान है और वह सशक्त संगठन में उभर कर आता है तो वह पूंजीवादी तत्वों की शोत्रणकारी भूमिका को समाप्त करके, दे‌ा को सच्चे लोकतंत्र या समाजवाद की दिशा में ले जा सकता है। ऐसे विचारक तथा तत्वदर्शी व्यक्ति को कुलक समर्थक कहना, दिन को रात कहने के बराबर है।

संदर्भ

1. जातिवादी कौन : एक विश्लेषण, प्रकाशक किसान ट्रस्ट, मई दिल्ली, पृ. 26, सं. 1986
2. वही

3-4-5. वही, पृ. 27

6. वही, पृ. 36
7. वही
8. वही, पृ. 36
9. यदुनाथ सरकार, औरंगजेब सं. 1951, पृ. 193
10. वही, पृ. 195

11. डा. नत्थन सिंह, इतिहास पुरुष : महाराजा सूरजमल, पृ.31, 32, 34, यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ. 200-201
12. के. आर. कानूनगो, जाटों का इतिहास, सं. डा. नत्थन सिंह, पृ. 23
13. एच. आर. ऋषि, रोमा, पृ. 42
14. जातिवादी कौन : एक विश्लेषण, पृ. 16
15. वही, पृ. 10
16. वही
17. वही, पृ. 39
18. वही, पृ. 40, 41, 42
19. वही, पृ. 43
20. देखें, वही, पृ. 32
21. डा. रामविलास शर्मा, भारत मं अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, खण्ड-2, पृ. 308
22. वही
23. सं. डा. नत्थन सिंह, उत्तर-प्रदेश के जाटों की शासन-व्यवस्था, पृ. 219
24.-25-26. वही, पृ. 220-221
27. विस्तार के लिए पढ़ें, डा. रामविलास शर्मा, 1857 की राज्य क्रान्ति
28. वीरेन्द्र सिंधु, युगद्रष्टा भगतसिंह, पृ. 56-60
29. महेन्द्र प्रताप, उत्तर-प्रदेश में किसान-आंदोलन, पृ. 44-46
30. महेन्द्र प्रताप, उत्तर प्रदेश में किसान आन्दोलन, पृ. 43
31. वही, पृ. 49
32. वही, पृ. 63
33. देखें चौधरी चरण सिंह उत्तर प्रदेश में भूमि-सुधार और कुलक-वर्ग, पृ. 192-199
34. चरणसिंह, उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार और कुलक वर्ग, आमुख
35. वही, पृ. 200
36. वही, पृ. 191
37. डा. रामविलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद, भाग-2, पृ. 191 यह बातचीत का विवरण 3 अगस्त, 1934 के लीडर नामक पत्र में प्रकाशित हुआ था।
38. वही, पृ. 191
39. यह पुस्तक सन् 1936 में बनारस से प्रकाशित हुई थी।
40. डा. रामविलास शर्मा भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद, पृ. 180
41. वही
42. जयप्रकाश नारायण, समाजवाद ही क्यों, पृ. 138

बज्रादपि कठोर कुसुमादपि कोमल

चौधरी चरण सिंह जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि एक ओर वह वज्र से अधिक कठोर थे और दूसरी ओर फूल से भी अधिक कोमल थे। समाज के उपद्रवी वर्ग, अनुशासनहीन-छात्र, रिश्वतखोर पुलिसमैन तथा अन्य सरकारी विभागों के लोगों को दण्ड देने में वह जितने कठोर थे, उससे कहीं अधिक कोमल हृदय वाले व्यक्ति की तरह वह व्यथित उस समय होते थे, जब अपने व्याख्यानों में देश के उन दुःखी लोगों का हाल बताते थे, जिनको न तो दोनों समय को भरपेट भोजन मिलता है, न सर्दी तथा गर्मी में शरीर को ढकने के लिए आवश्यक कपड़ा मिलता है। एक स्थान पर भाषण करते हुए उनकी आंखें नम और गला भर आया था, जब वह बता रहे थे कि अकेले मुम्बई में हजारों की संख्या में ऐसे लोग हैं, जो हलवाइयों की दुकानों के सामने पड़ी जूठन की पत्तलों से भोजन का अंश चुन-चुन कर अपना पेट भरते हैं। साथ ही अनेक ऐसी महिलाएं हैं, जिनके पास, एक से अधिक साड़ी नहीं है। ऐसे तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए वह बड़े व्यथित तथा द्रवीभूत हो उठते थे।

उनके द्रवीभूत होने, व्यथा-विगलित होने की दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना है, जिला मेरठ के एक अत्यंत प्राचीन कस्बा बागपत की, जो प्राचीन काल में व्याघ्रप्रस्थ कहलाता था। यह कस्बा यमुना-नदी के किनारे पर बसा है। किसी समय यहां घने जंगल थे, जिसमें शेर तथा बाघ अधिक मिलते थे। उनके प्रस्थ अर्थात् स्थान को व्याघ्रप्रस्थ कहा जाता था। बागपत उसी का तद्भव रूप है। यहां 18 जून, 1980 को एक हृदयविदारक घटना घटी थी। बात इस प्रकार हुई कि गांव सांकल-पुट्ठी के एक धनी व्यक्ति त्रिलोकचंद त्यागकी की बेटी श्रीमती मायादेवी त्यागी अपने पति ईश्वर सिंह त्यागी तथा उसके दो मित्र सुरेन्द्र सिंह ठाकुर एवं राजेन्द्र गौड़ के साथ एक प्राइवेट टैक्सी में, अपनी भतीजी कंवल सिंह त्यागी की बेटी के विवाह में शामिल होने के लिए, अपने गांव सांकल पुट्ठी जा रही थी। बागपत के चौराहे से पहले उनकी कार का एक पहिया पंचर हो गया था।

उसको ठीक कराने के लिए टैक्सी चालक रोशन ले गया। इसी बीच, तीनों पुरुष समीप में शराब की दुकान पर बीयर पीने चले गये थे। माया त्यागी अकेली कार में थी। दिन के 12 बजे का समय था कि एक सब-इंस्पेक्टर एक दीवान, जो सिविल कपड़ों में थे, कार के पास आकर माया से उसके बारे में पूछताछ करने लगे। किसी ने उसके कंधे को दबा दिया। इस पर माया त्यागी ने दोनों को झिड़क दिया। इस घटना को तीनों व्यक्तियों ने बीयर की दुकान से देखा और वे तुरन्त कार पर आ गये। उन्होंने दोनों व्यक्तियों के साथ कहा सुनी की। जब उनको मालूम हुआ कि उनमें एक छोटा दारोगा था और दूसरा दीवान है तो उन्होंने वहां से निकल जाने का मन बनाया। लेकिन कार का सेल्फ स्टारटर काम न कर पाया। अतः वे नीचे उतर कर कार को धकेलने लगे थे। इसी बीच, थाने से कुछ लोग पुलिस की बर्दी में तथा कुछ सादा वेश में आये और चौराहे से ही, उन पर फायर करने लगे। गोली लगने से ईश्वर सिंह त्यागी तथा सुरेन्द सिंह वहीं गिर पड़े। राजेन्द्र गौड़ एक घर के सामने रखी ईटों के पीछे छिप गया था। लेकिन बाद में उसने आत्म-समर्पण में दोनों हाथ ऊपर उठा दिये और जान बचाने की प्रार्थना की। जान न लेने का आश्वासन पाकर वह बाहर निकला, लेकिन उसे भी गोली मार दी गयी।

माया त्यागी स्वयं को बचाने के लिए पीछे की सीट के नीचे घुस गयी, पर उसको खींच कर निकाल लिया गया। इस प्रक्रिया में उसे रायफल के बटों से कोंचा गया तथा खींचा गया। अतः उसकी साड़ी फट गयी। उसे केवल पेटीकोट तथा ब्लाउज में, भरी भीड़ के सामने चौराहे तक लाया गया। पुलिस वालों ने उसके शरीर को ढकने वाले कपड़ों को भी फाड़ दिया। सड़क पर शीशे बेचने वाले नूरुद्दीन नामक व्यक्ति को, यह बात बुरी लगी और उसने उसकी इजज्त बचाने के प्रयास में उसके ऊपर कपड़े का एक टुकड़ा फेंक दिया ताकि उसकी शर्म रह जाए, पर उस कपड़े को भी पुलिस वालों ने छीन लिया। थाने का पुलिस आफीसर मेरठ गया था। उसको वायरलैस से बुलाया गया। माया को कहा गया कि वह अपना नाम सुदेश बतायेगी और भयभीत माया त्यागी ने ऐसा ही किया। तब उसको डकैतों के एक गेंग का अंग बताकर एक एफ. आई.आर. दर्ज कराई गयी। भयभीत माया ने एडवोकेट जगवीर सिंह के सामने स्वयं को सुदेश ही बताया। उस समय तो एडवोकेट उसको पहचान न पाये, लेकिन बाद में उनको ध्यान आया कि वह सांकल पुट्ठी के त्रिलोकचन्द त्यागी की बेटी मायावती थी। वह लौटकर थाने आये, पर उनको दूसरी बार उससे

मिलने नहीं दिया। यहां तक कि उसके भाई कंवल सिंह को भी उस तक नहीं जाने दिया।[1]

जिला मजिस्ट्रेट मेरठ को लिखी गयी माया त्यागी की प्रार्थना में कहा गया था कि थाने में उसके साथ 9 व्यक्तियों ने बलात्कार किया था, जिनमें प्रथम थानेदार था।[2] रक्त-रंजित माया त्यागी को दूसरे दिन मेरठ के डपरिन हॉस्पीटल में दाखिल कराया गया।[3] बागपत-सिम्पटंम्स ऑफ ऐ डिसीज' पुस्तिका के पृष्ठ 53 पर छपी मेडीकल रिपोर्ट गुप्तागों की क्षतिग्रसित तथा खून से लथ-पथ कहती है।

इस घटना को दबाने के भरसक प्रयास किये गये। पत्रकारों को धमकाया गया, महिला-संगठन के सदस्यों को वस्तुस्थिति से परिचित नहीं होने दिया। भारत-सरकार के तत्कालीन गृहमंत्री स्वर्णसिंह, लोकसभा की दस महिला सदस्य और एक अन्य सदस्य जिस गेस्ट-हाउस में बैठकर वास्तविकता की जानकारी के लिए लोगों से मिल रहे थे, उसके द्वार पर दो वे पुलिस अधिकारी तैनात थे, जिनकी उपस्थिति में कोई व्यक्ति सच्ची बात बताने का साहस करने के लिए नहीं जा सकता था। 12 जुलाई 1980 को 'ब्लिट्ज' पत्रिका में प्रकाशित हुई सूचना का सन्दर्भ देता हुआ 'बागपत सिस्पटम ऑफ ए डिसीज' का लेखक 'कोप्स वार ऑन प्रेस' शीर्षक देकर कहता है कि आतंक के घने पर्दे के द्वारा माया त्यागी के साथ हुई शील-भंग की घटना को, सामने आने से रोक दिया गया।'[4] यही कारण था कि सरदार स्वर्णसिंह, उनके साथ आये लोकसभा सदस्यों तथा महिला प्रतिनिधियों को सत्य तक पहुंचने नहीं दिया गया था। लेखक एक प्रत्यक्षदर्शी दुकानदार के शब्दों को उद्धृत करता हुआ लिखता है—'गृहमंत्री के पास भीतर गये प्रत्यक्षदर्शी लोग किस प्रकार सच्चाई का बयान कर सकते हैं, जबकि उनको भीतर जाते हुए दो दोषी पुलिस अधिकारियों ने देख लिया था।'[5] इससे लगता है कि ऐसे लोगों को ही या तो भीतर जाने दिया गया था, जो पुलिस द्वारा बताया गया बयान देने को तैयार थे अथवा उनको इतना भयभीत कर दिया गया था कि वे सच्चाई का बयान न करें। इस प्रकार देश की प्रेस, सर्वोच्च संस्था लोकसभा और उसके सम्मानित अधिकारी तथा सदस्यों तक, सच्चाई न पहुंचने की व्यवस्था कर दी गयी।

जब एक किसान-परिवार की अपमानित तथा उत्पीड़ित महिला को कहीं से न्याय नहीं मिला, तब त्रसित महिला के जर्जर स्वाभिमान की पुनर्स्थापना के लिए, किसान-नेता चौधरी चरण सिंह ही मैदान में आये।

वह 8 जुलाई के दिन, 9 बजे बागपत पहुंचे। उनके आगमन की सूचना पाकर लोगों ने 7 बजे से ही आना शुरू कर दिया था। चौधरी साहब ज्योंही मंच पर पहुंचे थे कि 'चौधरी चरण सिंह जिन्दाबाद' के नारों से आकाश गूंज उठा था। यह था, एक ईमानदार तथा जनता के हितों के साथ जुड़े नेता का हार्दिक स्वागत। गांवों से आने वाले लोगों की भीड़ उमड़ती हुई, 'बागपत सिम्पटम ऑफ एक डिसीज' का अनुमान है कि तेजे गर्मी में तीस हजार ग्रामीण आनन-फानन में एकत्र हो गये थे। चौधरी साहब ने जोरदार शब्दों में कहा जो प्रान्तीय सरकार एवं केन्द्रीय सरकार एक महिला के सम्मान की रक्षा न कर सकी और दोषियों को दण्ड देने में विफल रही है, ऐसी सरकार को शासन में रहने का कोई अधिकार नहीं है। जार्ज फर्नाण्डीस ने सरकार से त्याग-पत्र देने को कहा।[6]

चौधरी साहब ने भरे गले से कहा था कि यह घटना हमारे चरित्र के लिए अपमान है। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसी घटनाएं तो अंग्रेजों के राज में भी नहीं होती थीं। आपने एक ओर तो जनता के मनोबल को जागृत करने के लिए कहा था कि यह वही जनपद है, जहां से 1857 की क्रांति आरम्भ हुई थी और दूसरी ओर दुःखभरी आवाज में अपनी मां-बहनों के सम्मान-रक्षा की पुकार की। इसका परिणाम यह हुआ कि वहां एकत्रित जन-समूह की क्रोध से मुट्ठियां बंध गयी थीं।[7] प्रशासन की ज्यादतियों के विपरीत, जनान्दोलन खड़ा करके चौधरी साहब ने लोकतंत्र की असली भावना की रक्षा की। बागपत में ही आने वाले किसानों के साथ पुलिस ने उस दिन भी मारपीट की पर जनता का जो सैलाब उमड़ा वह किसी से रुका नहीं।

एक निर्दोष तथा असहाय नारी के सम्मान की रक्षा के लिए चौधरी साहब ने पूरे प्रदेश में आन्दोलन को जन्म दिया। प्रायः प्रत्येक तहसील कार्यालय तक महिलाओं का जुलूस निकाल कर विरोध प्रकट किया गया। पूरे समाज में एक चेतना जागृत करने का श्रेय उनको है। आज के नेताओं और चौधरी साहब में यह अंतर था। आज लोग आत्मकेन्द्रित हैं, वह जनता के हितों के साथ प्रतिबद्ध थे, आज लोग हत्या, अपहरण, बलात्कार की घटनाओं पर कान बंद कर लेते हैं, वह विरोध में आन्दोलन खड़ा करते थे, स्वयं उद्वेलित होते थे और हजारों की संख्या में एकत्रित जनसमूह को उद्वेलित कर दिया करते थे। इंसानियत की रक्षा का प्रश्न, व्यवस्था का सवाल और मानव की गरिमा का मसला चौधरी साहब के लिए अपने राजनीतिक हितों से ऊपर था। माया त्यागी की त्रासदी पर वह व्यथित थे। उनका कोमल हृदय द्रवीभूत था, कानून तोड़ने वाले को

दंड दिलाने के सवाल पर वह कठोर थे।

संदर्भ

1. विस्तार के लिए देखें बागपत सिम्पटम ऑफ ए डिसीज, काना सुब्रह्मण्यम् प्रकाशक : किसान ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ. 21 से 25 तक
2. वही, पृ. 2
3. वही, पृ. 3
4. वही, पृ. 12
5. वही
6. वही, पृ. 13
7. वही, पृ. 14

चौधरी साहब के व्यक्तित्व की परिचायक एक ऐतिहासिक घटना

बात सन् 1971 की है, चौधरी साहब जनपद मेरठ में तूफानी दौरा करते हुए एक ऐतिहासिक ग्राम सोरम में पहुंचे थे। यह सोरम गांव वही है, जो 12वीं सदी से लेकर बीसवीं सदी तक सर्वखाप पंचायत का केन्द्र रहा था। इस पंचायत ने देश पर आक्रमणकारियों तथा धार्मिक-संकीर्णता के वशीभूत जनता-विरोधी शासन करने वालों के विरुद्ध आवाज उठाई थी और अपनी बात मानने के लिए अलाउद्दीन खिलजी जैसे शासकों को मजबूर कर दिया था। इसी ने गौरी के सम्मुख पृथ्वीराज चौहान के पराजित हो जाने पर, चार प्रस्ताव पास करके कहा था–'हम अपने क्षेत्र और धर्म की रक्षा के लिए प्राण न्योछावर कर देंगे। अपनी रक्षा के लिए एक लाख सेना तैयार की जायेगी, खापों के क्षेत्र में शांति और व्यवस्था बनाये रखी जायेगी और बारातों के साथ सशस्त्र सैनिक जायेंगे।' इसी पंचायत ने, सन् 1248 में गंगा-स्नान-पर्व की पूर्व सन्ध्या पर, सुल्तान नसुरुद्दीन के शासन-काल में प्रस्ताव पास करके। दिल्ली की सरकार को कह दिया था, हानिकारक करों को हटा दिया जाना चाहिए, किसी जाति की स्त्री को उसकी जाति की अनुमति के बिना न ले जाया जाय; किसी जाति के शासक को जनता को सताने तथा हानिकारक कर लगाने का अधिकार नहीं है। इसी तरह के प्रस्ताव, सन् 1297 में पास किए थे। इनमें कहा गया था–'बढ़ा हुआ राजस्व कोई नहीं चुकायेगा', 'बारातों पर लगाये गए प्रतिबन्धों का पालन नहीं किया जायेगा', जजिया नहीं चुकाया जाना चाहिए और पंचायत को अपनी पूर्ण-स्वतंत्रता कायम रखनी चाहिए और यदि दिल्ली का बादशाह इन प्रस्तावों को नहीं मानता तो उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ देना चाहिए। ऐतिहासिक महत्व की बात यह है कि बादशाह के प्रमुख अमात्य मलिक काफूर ने इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया था।

जिस समय, मुस्लिम शासकों की धार्मिक-संकीर्ण और जनता के शोषण के विपरीत बोलने का साहस न किसी राजा में था, न किसी पुरोहित अथवा शंकराचार्य में, उस समय सर्वखाप पंचायत शासन को सार्थक एवं सफल चुनौती दे रही थी। उसी पंचायत के केन्द्रीय ग्राम में चौधरी साहब गए थे। उस ग्राम के बालमीकियों की ओर से मुंगाराम (जिसको लोग मुंशीजी कहते थे।) एक थाली में एक-सौ-इक्यावन रुपये और एक पगड़ी लेकर, चौधरी साहब को भेंट करने के लिए आए। तभी श्री अतरसिंह मैनेजर शाहपुर ने चौधरी साहब को बताया कि यह आदमी पढ़ा लिखा है। जैसे ही मुंगाराम पगड़ी बांधने के लिए आगे बढ़े, वैसे ही चौधरी साहब बोले, 'पगड़ी तब बंधवाऊंगा, जब कुछ सुनाओगे।' इस पर मुंगाराम ने सुनाया–'कदम गोयद कदम गोयद के मंसाहे जहानम। कलम कसरा बदौलत मय रसानम, अगर बद-बकशं वासंद गैचदानम्। एके बार दौलत है रसानम (अर्थात् कलम कहता है कि मैं जंगल की जड़ हूं, पर जो मुझे तोड़े तो मैं मोती की लड़ी हूं। जो मुझे छोड़ जाये, वह कम्बख्त हो जायें और ऐश-अरसत से हाथ धोये।' मुंगाराम की बात सुनकर, चौधरी साहब ने पगड़ी बंधवाई। इसके बाद वह बोले–'एके मर्द दीदम न पाओ न पर, न बदर सिकम मादर न पुस्तो गदर। न बर आसमानो न जेरे जमीं हमेशा खुर्द गोश्ते है आदमी' अर्थात् एक मुर्ग देखा, जिसके न पैर थे, न पर, उसकी न मा थी, न बाप। वह न आसमान से पैदा हुआ था, न जमीन से, आदमी हमेशा गोश्तखोर है।

चौधरी साहब ने, फारसी शेर के जवाब में फारसी का शेर सुनाकर सभी लोगों को आश्चर्य में डाल दिया और मुंगाराम जी से बोले–'एक और सुना कर जाओगे भाई। तब उसने सुनाया था–

कभी सर्दी कभी गर्मी यह कुदरत के इशारे हैं,
क्या प्यास उनको भी लगती है, जो दरिया के किनारे हैं।

शेर सुनकर चौधरी साहब मुग्ध हो गए थे। इस घटना का समस्त विवरण सर्वखाप पंचायत के महामंत्री स्वर्गीय चौधरी कबूलसिंह ने मुझे उस समय सुनाया था, जब मुझे यह बुढ़ाना आकर उनका साहित्यिक-संग्रह देखने का निमंत्रण देने के लिए 21-7-1990 को मेरे घर आए थे।

इस घटना से, स्वर्गीय चौधरी साहब के व्यक्तित्व के उस पक्ष का उद्घाटन होता है, जिससे बहुत कम लोग परिचित हैं।

एक दूसरी घटना है–14-7-1958 की, चौधरी साहब जनता वैदिक कालिज बड़ौत के एन.सी.सी. कैडिट्स की सलामी लेकर, मंत्र से उतरे और धीरे-धीरे

चल रहे थे कि राजेश कुमार नामक एक छात्र ने आकर उनको करबद्ध नमस्कार किया और अपनी डायरी उनके सामने कर दी। उसमें आपने लिखा है–'सच बोला करो।' इस तरह आपने, अपने दैनिक आचरण के एक गुण का संदेश छात्र को दे दिया।

निष्कर्ष

चौधरी साहब का जन्म भारत के एक गरीब किसान परिवार में हुआ था। इस किसान-बालक के जन्म पर, खुशी में न कोई बन्दूक चलाई गयी थी और न कोई छोटा-बड़ा जलसा हुआ था। सम्भवतः उस समय किसी ने यह सोचा भी न होगा कि एक दिन आगे चलकर यह बालक, इतनी उच्चकोटि का विचारक, कुशल-प्रशासक और किसान-जनता को क्रांतिकारी चेतना से भरने वाला बनकर उभरेगा कि उसके विरोधी लोग, उसके गुणों एवं कार्यों की प्रशंसा करेंगे। निश्चय ही इस किसान-बालक ने समय के पटल पर राष्ट्र-निर्माण की दिशा और चेतना को इतने स्पष्ट स्वर्णाक्षरों में अंकित कर दिया है कि वर्षों तक सत्ता के शीर्ष स्थान पर बैठे रहने वाले कई लोग नहीं कर पाये हैं।

बड़े तथा बुद्धिजीवी घरानों में पैदा हुए बालकों की तरह चौधरी साहब की शिक्षा ऑक्सफोर्ड, हैरो, कैम्ब्रिज, कनाड़ा तथा अमेरिका आदि में नहीं हुई थी। प्रारम्भ में तो वह गांव की पाठशाला में पढ़े थे, हाई-स्कूल करने के लिए मेरठ गये और फिर आगरा कालेज, आगरा में चले गये थे। लेकिन शांति-निकेतन तथा विदेशों के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाने वाले अनेक भारतीयों की अपेक्षा, आपने सत्ता पाकर देश का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष करने की सच्ची भावना की शिक्षा यहीं पाई थी। उनका बचपन और अध्ययनकाल ऐसी शिक्षा के परिवेश में व्यतीत हुआ था कि वह न तो सामाजिक यथार्थ को अनदेखा कर सकते थे और न राष्ट्र के विकास की दिशाओं की उपेक्षा कर पाये थे। नई-शिक्षा ने उनको विलासप्रिय, सत्तालोलुप और असीम सम्पत्ति का संग्रह करने वाला आत्मकेन्द्रित इंसान न बनाकर, ऐसा बनाया था जो राष्ट्र तथा जनहित के प्रश्नों पर, बड़ी से बड़ी सत्ता के सामने, अपना विरोधी मत दर्ज करने का साहस रखता था। उस महान् आत्मा ने, केवल एक बात सीखी थी कि अपने प्रत्येक शब्द और कर्म से जनता का भला और देश का हित करना चाहिए। उनके सामने समस्या केवल राजनीतिक जीवन में ईमानदारी को बनाये

रखने, प्रशासनिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार को न पनपने देने, सरकारी कामकाज में मितव्यता की रक्षा करने और देश के भूखे, नंगे तथा बेघर इंसानों के जीवन को नितांत आवश्यक सुविधाओं से भर देने की थी। उसकी निजी आवश्यकताएं अल्प, जीवन अति साधारण और विचार महान् थे। वह देश को धन-धान्य, शिक्षा-संस्कृति और लोकहित के साथ प्रतिबद्ध प्रशासन से सम्पन्न करने पर कटिबद्ध थे।

आप सिद्धांत रूप से देश की उन्नति के लिए, कृषि-क्षेत्र के विकास के प्रबल समर्थक थे, पर लघु-उद्योगों एवं बड़े-उद्योगों के विकास को भी जरूरी मानते थे, लेकिन आप कृषि तथा लघु-उद्योगों के मूल्य पर, बड़े-उद्योगों का समर्थन नहीं करते थे। महात्मा गांधी ने बड़े उद्योगों के विकास को देश की आर्थिक उन्नति के लिए खतरा भले ही न माना हो, लेकिन पंडित नेहरू, एक बड़ी सीमा तक, इस खतरे के प्रति सजग थे। यही कारण था कि आपने सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े उद्योग को, व्यक्तिगत क्षेत्र के बड़े उद्योगों पर तरजीह दी थी। चौधरी साहब निजी क्षेत्र के बड़े उद्योगों की विभीषिका से भली प्रकार अवगत थे। उनके सामने यह बात स्पष्ट थी कि औद्योगिक पूंजीवाद अपने प्रारंभिक रूप में ही जबर्दस्त इजारेदारी की प्रवृत्ति का परिचय देता है। व्यापार हो चाहे माल के उत्पादन का प्रश्न, पूंजीवाद की प्रवृत्ति होती है कि एक शक्तिशाली गुट, अन्य गुटों को दबा कर, अपना इजारा कायम करे। व्यापारिक पूंजीवाद के युग में इजारेदार कम्पनियों का निर्माण और उनकी शक्ति का प्रसार होता है। ये कम्पनियां इतनी ताकतवर हो जाती हैं कि राज्य-सत्ता पर अधिकार कर लेती हैं अथवा उसको अपनी नीतियों का समर्थन करने के लिए विवश कर देती है।

चौधरी साहब जानते थे कि राजसत्ता के साथ पूंजीवाद का गठबंधन, पूंजीवाद की विशेषता होती है और इस गठबंधन का परिणाम होता है जनता का भयंकर शोषण। इसके स्पष्ट उदाहरण इंग्लैण्ड तथा भारत के इतिहास में उनके सामने मौजूद थे। इंग्लैण्ड की एक कम्पनी, जिसका नाम 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' था ने किस सीमा तक, भारत तथा अन्य देशों का शोषण किया था, यह सब जानते थे। इसका आधार था, स्वार्थों की पूर्ति, लालच की प्यास और अधिकाधिक धन कमाने तथा अपने राज्य की सीमा-विस्तार का विचार। इंग्लैण्ड, फ्रांस, पुर्तगाल यहां तक कि नार्वे के लोग, व्यापार के बहाने दूसरे देशों में पहुंचे और वहां के शासक बन कर जनता का शोषण करने लगे थे। यहां तक कि विजित देशों की सभ्यता और संस्कृति को मिटाने पर भी तुल गये थे। चौधरी साहब भारतीय

तथा योरोपीय व्यापारियों की मनोवृत्ति के अन्तर को भी भली प्रकार जानते थे। उनको ज्ञात था कि भारतीय लोग, व्यापार के उद्देश्य से जहां भी गये, वहां अपनी गौरवशाली संस्कृति का प्रभाव तो छोड़ा था, पर किसी का अधिकार, शासन, धर्म तथा अस्तित्व आदि को मिटाया नहीं। इसका प्रमाण उनके सामने स्पष्ट था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस समय भारत का माल लादे हुए भारत के बने जहाज लंदर पहुंचे, उस समय का वर्णन इतिहासकार टेलर ने इस प्रकार किया है—'लंदन के बन्दरगाह में भारत के बने जहाज पहुंचे। उन पर भारत का माल लदा हुआ था। यदि टेम्स नदी में दुश्मन का बेड़ा पहुंच जाता, तो उससे भी ऐसी हलचल पैदा न होती जैसी कि इजारेदारों में इन जहाजों के पहुंचने से हुई थी।' सबसे पहले लंदन में जहाज बनाने वालों ने विरोध में हल्ला मचाया था। उनका कहना था कि उनका धंधा चौपट हो जायेगा और अंग्रेजी-जहाज बनाने वाले मजदूर भूखों मर जायेंगे (डिगवी, पृष्ठ 79)। यह अन्तर था भारतीय व्यापारियों और ब्रिटिश मजदूर तथा व्यापारियों में। यही कारण था कि 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के भारत में पैर जमते ही इस देश का समस्त व्यापार चौपट हो गया था। चटगांव के जहाज बनाने वाले कारखाने बंद हो गये थे। लखनउ की चिकन, नासिक के बर्तन, आगरा के कालीन बनने बंद हो गये। लाखों मजदूर बेकार हो गये। किसान और खेती को भी चौपट कर दिया गया था और देश अंग्रेजी-माल का बाजार बन कर रह गया।

ऐसी नौबत स्वतंत्र भारत में न आये, इसलिए चौधरी साहब बहुत सावधान थे और अनेक तत्कालीन राजनीतिक नेताओं के विपरीत, एक निश्चित अर्थनीति लेकर सामने आये थे। उनकी अर्थनीति की प्रशंसा विदेशों में हुई है और अब तो कांग्रेस, भाजपा तथा अन्य राजनीतिक दल भी करने लगे हैं। उनकी अर्थनीति का मूलाधार था देश के प्रत्येक वर्ग की आर्थिक समृद्धि। वह चाहते थे कि न तो देश का किसान परमुखापेक्षी रहे, न विविध प्रकार की मजदूर करने वाला समुदाय भूखा रहे और न उद्योग तथा व्यापार में लगा वर्ग आर्थिक तंगी से गुजरे। साथ ही वह अर्थ के असंतुलित संग्रह के पक्षधर भी न थे। उनको विश्वास था कि जिसके पास असीम दौलत होगी, वह दूसरों के शोषण का रास्ता भी पकड़ सकता है और देश की राजसत्ता को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर उसकी नीतियों का उपयोग अपने सीमित स्वार्थों की पूर्ति के लिए कर सकता है। उनका यह संदेह, आज प्रत्यक्ष बनकर सामने आ गया है। कांग्रेस-सांसद प्रियरंजनदास मुंशी द्वारा संसद में कहे गये शब्द, इसका सबूत देते हैं। उन्होंने कहा था कि

उनको घर पर एक मोटा लिफाफा मिला था, जिसमें धमकियां भरे पत्र थे और रात को तीन बजे धमकियों भरा फोन भी मिला था। इस पर पूर्व प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने कहा था कि देश में एक ऐसा औद्योगिक घराना है, जो संसद, सरकार तथा वित्तीय संस्थाओं पर दबाव डाल रहा है। (रायल बुलेटिन, 25 अप्रैल 2001, मुजफ्फरनगर, पृष्ठ 1) यह घटना इस बात की ओर इशारा करती है कि अपने संकीर्ण आर्थिक हितों की इजारेदारी कायम रखने के लिए, पूंजीपति संसद-सदस्यों के मौलिक अधिकारों पर भी अंकुश लगाने का इरादा रखता है। लोकतंत्र के लिए यह बहुत बड़ा खतरा है।

चौधरी साहब की अर्थनीति, इस स्थिति से बचने का नायाब तरीका था। वह समूचे देश को, एक परिवार मानकर उसके प्रत्येक सदस्य के हितों की रक्षा के पक्षधर थे। वह ऐसी आर्थिक स्थिति के पक्षधर न थे, जिसमें एक वर्ग इतना प्रभावशालीन हो जाये कि वह औरों को कुचल दे और जनता की रक्षक तथा पोषक सरकार को भी प्रभावित करके, केवल अपने हित की नीतियां तैयार करा ले। लोकतंत्र के लिए निश्चय ही यह अभिशाप है। इस अभिशाप से देश को मुक्त रखने के लिए ही उनकी नीति थी और इसको कार्यरूप में प्रस्तुत करने के लिए, यह यावज्जीवन संघर्ष करते रहे थे।

चौधरी साहब कट्टर गांधीवादी थे। गांधीवाद उनके लिए केवल सिद्धांत या व्याख्यान का विषय न था, वरन् वह उनके दैनिक जीवन में आचरण का अंग था। वह खद्दर पहनते थे, पाप से घृणा करते थे, पापी को गले लगा लेते थे। अपने राजनीतिक विरोधियों के प्रति भी अपशब्दों का व्यवहार करना उनका स्वभाव न था। वह इतने साधारण प्रकृति के व्यक्ति थे कि लखनऊ विधान-सभा से, 8 माल रोड वाले अपने निवास तक पैदल चले जाते थे, लेकिन राष्ट्रहित और वैयक्तिक स्वाधीनता की रक्षा के प्रति वह इतने सजग थे कि प्रधानमंत्री तक को चुनौती देने के लिए तैयार हो गये थे। उनकी इस क्रांतिकारी चेतना के मूल में लाला हरदयाल, खुदीराम बोस, राजा महेन्द्र प्रताप, करतार सिंह 'सरावां', सोहन सिंह 'भकना' आदि की गतिविधि और देश को, हर संभव तरीके से अंग्रेजी-दासता से मुक्त कराने की चेतना वर्तमान थी।

उनको अपने क्षेत्र की सर्वखाप पंचायत द्वारा सन् 1191, 1201, 1248, 1255 और 1297 में पारित प्रस्तावों पर गर्व था और उनसे उनको शासन की ज्यादतियों के विरोध की प्रेरणा मिलती थी। इन प्रस्तावों में मोहम्मद गौरी, सुल्तान नसुरुद्दीन और अलाउद्दीन खिलजी के जन-स्वतंत्रता-विरोधी निर्णयों को चुनौती

दी गयी थी। इसी प्रकार आपको सम्राट अकबर के नील की खेती वाले इजारेदारी के आदेश को चुनौती देने वाले आगरा-मण्डल के किसानों की वीरता का कार्य, ग्राम तिलपत, जनपद मथुरा के किसान-नेता गोकुला और उसके बीस हजार क्रांतिकारी किसानों के बलिदान की घटना एवं सिनसिनी, भरतपुर के किसान राजाराम द्वारा औरंगजेब के तीन प्रमुख सेनापतियों को पीट कर स्वाधीनता का शंख बजाने वाला ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य, जनता की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक एकता के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता रहता था।

जनता की अपेक्षा तथा उद्योगपतियों को सस्ती दरों पर बिजली देने के डा. सम्पूर्णानन्द के कार्य, जनहितों की उपेक्षा के लिए चन्द्रभानु गुप्त के मंत्रिमण्डल के विपरीत और अन्ततः केन्द्र की कांग्रेसी सरकार के पारिवारिक हितों की संरक्षक नीति का विरोध करने के लिए आपको लोकनायक की समग्र-क्रांति का सक्रिय एवं प्रभावशाली अंग बनना पड़ा था और उस क्रांति को इस सीमा तक पहुंचा दिया कि देश से तीन दशक लम्बा कांग्रेसी-शासन घुटने टेक गया था।

भारत के इतिहास का यह बहुत बड़ा दुखान्त अध्याय है कि जब कभी इस देश के आम-आदमी के दुखभरे दिनों को, सुख के दिनों में बदलने के लिए कभी कोई देश का लाल खड़ा होता है, तब अपने वैयक्तिक अथवा दलीय स्वार्थों में डूबे लोग, उसको विफल बनाने के लिए कमर कस कर तैयार हो जाते हैं। राजा ययाति के पांच निष्कासित पुत्रों और पांच उनके सहयोगी राजाओं के साथ यही हुआ था। उन्होंने अपनी भूमि के सिंचन के लिए रावी से नहर निकाली थी, लेकिन अपार सम्पत्ति के लालच में वशिष्ट ने सुदास को उत्तेजित करके उनके विनाश के लिए युद्ध आरम्भ करा दिया था, जो वर्षों चला तथा दाशराज नामक युद्ध से जाना जाता है। उस युद्ध में सुदास की विजय हुई, दस-राजाओं की हार और पराजित राजाओं की लूटी हुई समस्त सम्पत्ति, वशिष्ठ के पुत्रों को मिली। इसीलिए ऋग्वैदिक साहित्य में पाराशर, वशिष्ठ और सत्ययात को 'सुदास' का नौकर कहा गया है।

यही स्थिति, आज के युग में गुरु अर्जुन सिंह तथा अन्य सिख युवकों की हुई थी। अपनी धार्मिक तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता-हेतु संघर्षरत होने के कारण जिनको अपने पुत्रों को जिंदा दीवाल में चिने जाने का कष्ट भोगना पड़ा था। कैनाड़ा से सिख-युवकों द्वारा भारत आकर हथियारों के बल पर देश को स्वतंत्र करने की कोशिश में लगे रहने के कारण, वर्मा के जंगलों में भटकते प्राण गंवाने पड़े थे, जो अंग्रेजों के हाथों लग गये, उनको काले पानी की सजा भुगतनी पड़ी

या फांसी पर चढ़ना पड़ा। सरदार करतार सिंह 'सरावा' को फांसी के तख्ते पर झूलना पड़ा, जलियांवाले बाग के हत्यारे को मौत के घाट उतार कर सैकड़ों निर्दोष लोगों के कत्ल का बदला लेने वाले ऊधम सिंह को शहीद होना पड़ा, जमींदारों के अत्याचारों से परेशान मोपला किसानों को जमींदारों के गुंडों के हाथों, अपनी बीवी-बच्चों से हाथ धोने पड़े, स्वयं को जेलों में सड़ाना पड़ा और दुःख इस बात का है कि महात्मा गांधी ने उन बेचारों के दर्द को जाने बिना, उनके आन्दोलन को हिंसा के साथ जोड़कर, उनकी सहानुभूति में एक शब्द भी नहीं कहा, यही परिणाम चोरी-चोरी किसान-आन्दोलन का हुआ। पुलिस के सिपाहियों के मरने पर गांधी जी को दुःख हुआ, पर नील की खेती कराने वाले अंग्रेजों के शोषण तथा उत्पीड़न से त्रस्त किसानों की व्यथा की ओर से आंखें फेर कर आन्दोलन समाप्त करा दिया गया। अवध के किसानों के आन्दोलन का इतिहास भी इसी प्रकार का है। जमींदारों के शोषण से उत्पीड़ित किसानों के साथ न्याय न होकर, उलटे उनको जेलों में सड़ना पड़ा, वर्षों तक चलने वाले मुकदमों में जहांलत भोगनी पड़ी। उनका दोष केवल इतना था कि गांधी जी के संकेत पर गये, पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सरयू के तट पर किसान-सभा की और पुलिस के सामने किसानों का आह्वान किया कि जिन लोगों ने, जमींदार की फसलें काटी हैं या उनको हानि पहुंचाई है, वे अपना दोष स्वीकार कर लें। किसानों ने अपने आदर्श चरित्र का प्रदर्शन करते हुए अपना दोष स्वीकार करके उस महानता का परिचय दिया था, जो राजनीतिक नेताओं में बहुत कम मिलती है, पर अपनी सत्यवादिता के लिए उनको जेलों में सड़ना पड़ा। इस घटना से चौधरी साहब के सामने देश के भू-स्वामियों, नेताओं और राजनीति के खिलाड़ियों के चरित्र स्पष्ट हो गये थे।

लाला लाजपत राय की मृत्यु के लिए उत्तरदायी सौंडर्स को नर्क भेजने वाले तथा 'पब्लिक सुरक्षा बिल' के नाम पर देश के लोगों की स्वाधीनता खत्म करने के लिए बुलाई गयी असेम्बली में बम फेंकने वाले भगत सिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को, फांसी के समस्त नियमों की अवहेलना करके, तीनों को फांसी दे दी गयी और क्रांति के अग्रदूत नेता जी सुभाष चन्द्र बोस को, साम्राज्यवादी ताकतों के जाल में फंसा कर, समाप्त कर दिया गया। राजा महेन्द्र प्रताप, लाला हरदयाल और रासबिहारी बोस जैसे देशभक्तों को, साम्राज्यवादी शक्तियों के माध्यम से, आजादी लाने के लिए हिंसक तरीके का समर्थक कह कर, भारतीय राजनीति में अप्रासंगिक बना दिया गया।

यही नहीं, देश के हजारों अहिंसावादी जेलों में सड़ गये और मुक्त होने के बाद नाकारा बनकर बैठ गये। वे रोटियों और वस्त्रों तक के लिए तड़पते रहे और राजनीतिक दलों को चंदा देकर उनके अनुयायी बनने का गौरव पाकर, देश के आर्थिक स्रोतों के अधिकारी बन गये। अंग्रेजों द्वारा खाली की गयी कुर्सियों पर जो लोग बैठे थे, उनमें से अधिकांश राष्ट्रीय दायित्व को भूल कर, देश में व्याप्त गरीबी, आर्थिक असमानता, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, सामाजिक भेदभाव और धार्मिक आडम्बरों की ओर से आंखें फेर कर, अपने व्यक्तित्व के उत्कर्ष और पारिवारिक समृद्धि की साधना में लीन होते रहे। वे देश के करोड़ों लोगों की व्यथा-वेदना को आश्वासनों के माध्यम से मिटाने का प्रयास करते रहे।

अनेक सच्चे देशभक्तों के समान ही दुःखद अन्त हुआ समग्र-क्रांति के अग्रदूत लोकनायक का, यही अंत हुआ समाजवादी क्रांति के स्वप्नदर्शी डा. लोहिया का और यही हुआ सरदार पटेल का, जिसने अपने प्रशासनिक कौशल से देश के लगभग छह सौ इकसठ राज्यों को भारतीय यूनियन का अंग बनाया था और अपने प्रशासकीय कौशल एवं राष्ट्रीय-भावना के जोश में, उन तत्वों को खत्म कर दिया था, जो अंग्रेजों की कूटनीति से विभाजित भारत को भी टुकड़ों में बांटने का षड्यंत्र कर रहे थे। यदि उन जैसा कुशल, देशभक्त और राष्ट्रहित में कठोर निर्णय लेकर उसको लागू करने वाला गृहमंत्री न होता, तो बहुत सम्भव है कि देश कई भागों में बंट गया होता। इस देश का दुर्भाग्य है कि विदेशी शासन को, भारत छोड़ने के लिए, अपने आन्दोलनों से विवश करने वाली यहां की क्रांतिकारी जनता थी, यहा की नैवी थी, यहां की वह फौज थी, जिसने अंग्रेजी-सेना के भीतर ऐसा क्रांतिकारी संगठन खड़ा कर लिया था जो वह विदेशी ताकत के प्रत्येक भारत-विरोधी कार्य का मुंहतोड़ उत्तर दे सकता था। लेकिन देश की सत्ता ऐसे गठबंधन के हाथों में आई, जो प्रारम्भ से उद्योगपतियों, साहूकारों और पतनशील संस्कृति के प्रतीक जमींदारों तथा राजे-महाराजों के प्रभाव से बाहर न था। भारत से बाद में स्वाधीन हुए वीयतनाम, चीन और दक्षिण अफ्रीका ने अपने देशभक्त नेताओं के नेतृत्व में जो प्रगति कर ली है, भारत अभी तक उस स्तर पर पहुंच नहीं पाया है। इसमें भारत का कोई दोष नहीं है, दोष है उस प्रशासन-तंत्र और नेताओं का, जो अपने राष्ट्रीय दायित्व का सफल निर्वाह नहीं कर पाये। चौधरी साहब इसके अपवाद थे। यदि देश की बागडोर उनके हाथों में रही होती, तो देश चीन तथा जापान के समान समृद्ध और शक्तिशाली होता।

चौधरी साहब ने उत्तर-प्रदेश के विभिन्न मंत्रालयों के माध्यम से ऐसे कार्य किये थे, जिनसे आम-आदमी का बड़ा हित हुआ था। वह आज के नेताओं के समान न तो जातीय सम्मेलनों के अंग बने, न धर्म का आडम्बर खड़ा किया, न लाखों की सरकारी चाय पी, न करोड़ों का जेब खर्च लिया और न सरकारी नौकरियां तथा पद अपनी जाति के लोगों को ही दिए। इसके विपरीत शिक्षा, प्रशासन और अनुशासन बनाये रखने में योग दिया। आपने प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने की पहल की और मंत्रियों की यात्राओं पर विराम लगाने का प्रयास किया, गर्मी के दिनों में मंत्रालयों के शिमला या मसूरी स्थानान्तरण की परम्परा खत्म कराई, वन-विभागों से माफियाओं द्वारा वृक्षों की कटाई पर रोक लगाई, ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पर्क मार्गों को पक्का कराया, रजवाहों की पटरियों को सार्वजनिक प्रयोग के लिए खुलवाया, रिश्वतखोर अधिकारियों को अवकाश लेकर घर बैठने पर विवश किया, जनता के हितों की उपेक्षा और उद्योगपतियों को लाभ पहुंचाने वाले मुख्यमंत्रियों का विरोध किया, पार्टी के नाम पर पूंजीपतियों से धन का संचय करने वाले मुख्यमंत्रियों को सत्ता से बाहर किया, बड़े फार्म स्थापित करने के उद्देश्य से किसानों को बेदखल करने की कोशिशों को नाकाम किया, जातीय भेदभाव को समाप्त करने की योजना पर प्रधानमंत्री पं. नेहरू से विचार-विमर्श किया, अधिकतम लोगों को रोजगार दिलाने के उद्देश्य से लघु-उद्योगों के प्रोत्साहन पर बल दिया, लघु और बड़े उद्योगों के बीच उत्पन्न होने वाली स्पर्धा के खतरे को समाप्त करने के लिए यह व्यवथा प्रस्तुत कराई कि जो वस्तु लघु-उद्योगों में विकसित होंगी, उनका उत्पादन बड़े उद्योगों में न होगा और एक धार्मिक, जातीय और आर्थिक विषमता-जन्य शोषण से मुक्त समाज की रचना के लिए लोकनायक जयप्रकाश की समग्र-क्रांति को सफल बनाने के लिए उत्तर-प्रदेश, हरियाणा, पंजाब और राजस्थान से कांग्रेस के पारिवारिक एवं पूंजीवाद प्रभावित शासन को समाप्त कराने में ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया था।

चौधरी साहब ने देश के सबसे बड़े प्रान्त उत्तर-प्रदेश से किसान, मजदूर, साधारण स्तर के व्यापारी के जीवन में खुशियां भरने की नीति का समारम्भ, एक मंत्री के रूप में किया था और जब मुख्यमंत्री के रूप में करने का अवसर आया तो धनिक, तथाकथित धार्मिक और परिवार-पोषक वर्ग के राजनीतिक लोगों ने प्रदेश में राष्ट्रपति-शासन लगवा कर उस क्रांति के सामने दीवाल खड़ी कर दी। यह स्थिति केन्द्र में भी आई। जब प्रधानमंत्री की कुर्सी पर एक किसान

का बेटा बैठा, तब उच्चवर्गीय बुद्धिजीवियों, आत्म एवं परिवार के हितों मे केन्द्रित राजनीतिक नेताओं, देश की सम्पत्ति पर कुण्डली मार कर बैठे धनिकों और अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए नोटों से भरे सूटकेस देने में विफल अवसरवादी तत्वों ने एकमत होकर, किसान के बेटे को, देश के गरीबों का भाग्य नहीं बदलने दिया। दिनांक 15-11-84 के दिन दोपहर के बारज बजे, राजस्थान के एक किसान नेता बाबू जगजीवन राम के यहां गए। जाने का उद्देश्य था बाबूजी को इस बात के लिए राजी करना कि वह पिछड़ी जातीयों के समर्थन के साथ, चौधरी साहब की किसान-शक्ति से मिलकर, लोकहित की पूर्ति के लिए, देश का शासन अपने हाथों में लेलें और सत्ता के पदों को मिलकर आपस में बांट लें, ताकि देश प्रतिक्रियावादी तथा पूंजीवादी गठबन्धन के हाथों में जाने से बच जाय। कुम्भाराम को वहां एक दक्षिणात्य भी बैठे मिले। उन्होंने बाबू जी से जो कुछ कहा था, उसका सारांश इस प्रकार था—'देश पर तीन सिद्धान्त विहीन व्यक्तियों का शासन है। उन पर करोड़ों की सम्पत्ति है। तीनों के पास कोटा परमिट देने की क्षमता है और दूसरी ओर विरोधी नेता बिखरे हुए हैं, साथ ही आत्मकेन्द्रित भी हैं, राष्ट्र की चिंता, किसी को नहीं है। यदि ये तीन व्यक्ति सफल होते हैं तो देश का क्या होगा?

कुम्भाराम जी ने बाबू जी तथा चौधरी साहब के मिलकर काम करने पर बल दिया। बाबूजी की मान्यता थी कि 'मेरे पास देने को क्या है, देने वाले चौधरी साहब हैं।' एक कश्मीरी प्रख्यात नेता और महाराष्ट्र के तत्कालीन प्रभावशाली नेता भी मिले। एन. टी. आर. तथा एक अन्य नेता भी 21 नव. 1985 को दिल्ली आए। विपक्षी एकता पर बातें हुई। इसी दिन हेमवती वंदन बहुगुणा तथा चौधरी साहब की बातें, के. भगवान सिंह के घर पर हुई। दोनों बहुत समीप आए। पर बाबू जगजीवनराम और चौधरी साहब का राजनीतिक गठबंधन न हो सका अर्थात् युग-युग से शोषित किसान और श्रमिक वर्गों के नेताओं के दिल न मिल सके। यह देश के दुर्भाग्य का संदेश था। उस समय कोई पारिवारिक शासन की स्थापना, कोई अपने अहम में आपद-मस्तक डूबा, कोई धर्म और संस्कृति की चादर ओड़े और कोई शोषित, उत्पीड़ितों की रक्षा का स्वप्न लेकर आगे बढ़ा। फलतः अवसरवादी वर्गों की ऐसी योजना बनी कि गरीब किसान तथा परिश्रमी जनता के भाग्यों को पलटने के लिए कानूनी हथियारों से सुसज्जित होकर आया एक देवदूत, अधिकार विहीन होकर रह गया और एक लम्बी बीमारी के बाद इस धरा को छोड़कर चला गया और अपने पीछे छोड़ गया सत्ता के

भूखे मानवों को, जिन्होंने देश की सांस्कृतिक विरासत, मानवीय-मूल्य, लोकतंत्र और भारत माता के चिथड़े-चिथड़े करके खाना शुरू कर दिया और इस प्रक्रिया में, वे गीत गा रहे थे गरीबी हटाने का, दलितों के उत्थान का, हर हाथ को काम तथा प्रत्येक व्यक्ति को एक छत का साया देने का। उनके पेट तो भर गये, लेकिन गरीब और गरीब होता गया, बेकारों की फौज तैयार होने लगी, इंसान की सुरक्षा के चिथड़े-चिथड़े होते गये, रिश्वत लेना धर्म बन गया, अपहरण तथा बलात्कार की चीखों से आकाश फटने लगा, फिर भी दिल्ली की कुर्सियों तक किसी की आवाज न पहुंची। वहां विविध अवसरों पर, सम्राटों के शानदार आयोजनों के वैभव को फीका करने वाले राग-रंग चलते रहे और उधर भूख से पीड़ित महिलाएं अपने दो-दो तीन-तीन बच्चों को जहर पिला कर सदैव के लिए सोती रहीं। दर्जनों किसान ऋण न चुका पाने के कारण आत्महत्याएं करने लगे। इस सबको देख रही है वे आंखें जिन्होंने केवल देश के विकास का स्वप्न देखा था, देश की गरीब जनता के जीवन में परिवर्तन लाने की दिशा में सच्चे कदम उठाये थे।

भारत की बहुसंख्यक किसान जनता, दो-मुहे राजनीतिक नेता पर मुंह बनाती है और अपने सच्चे हितैषी नेता पर गर्व करती है और वह जब इरादा कर लेती है, तब उसके सामने, बड़े-बड़े नामधारी याचक बन जाते हैं। वह उनको देश एवं समाज-हित की राह पर चलने का संकेत देती है। जो उसके संकेत को समझ कर, उसके अनुरूप आचरण करने लगते हैं, उनको वह इतना प्यार और सम्मान देती है। यहां तक कि वह परलोकगामी होते हुए भी उनकी स्मृति पर छाया रहता है। इसके विपरीत, जो उसके संकेत को न समझ कर केवल अपनी ढपली बजाता रहता है, वह लोक में जीवित रहते हुए भी मृतक के समान माना जाता है।

भारत की किसान जनता जानती है कि उसके स्वर्गीय नेता के विषय में भारत का बेपढ़ा-लिखा किसान बड़ी आसानी से यह जानता है कि उसके नेता के दो स्वप्न थे—पहला गांवों की ओर चलो और दूसरा, एक शक्तिशाली किसान-संगठन बनाओ। पहले से उनका उद्‌देश्य यह था कि नगर तथा शहरों की तरह ही गांवों में भी सफाई, शिक्षा, सड़क, चिकित्सालय, देशभक्ति और समाज-कल्याण की भानवा से प्रेरित पंचायतें, बैंक, डाकघर और सांस्कृतिक परिवेश पहुंचाओ। एक शक्तिशाली किसान-संगठन की आवश्यकता का अनुभव आपने उत्तर-प्रदेश में विधायक, मंत्री तथा मुख्यमंत्री और केन्द्र में गृहमंत्री, वित्तमंत्री,

उप-प्रधानमंत्री और प्रधानमंत्री रहते हुए किया था। वह देख रहे थे कि लोक-विरोधी शासन की जड़ें खोदने में सर्वाधिक योग किसान देता है, लेकिन उसकी क्रांतिकारी चेतना का लाभ उच्च वर्ग का कोई बुद्धिजीवी अथवा पैसे वाला कोई नेता उठाता है। यद्यपि यह किसी प्रकार के तोड़-फोड़ वाले हिंसात्मक आन्दोलन के घोर विरोधी थे, पर शासन के आसन तक पहुंचने वाली प्रतिक्रियावादी ताकतों को रोकने और संवैधानिक तरीके से देश के ग्रामीण-क्षेत्र को विकास की चरमसीमा तक ले जाने के लिए, किसान-संगठन को अनिवार्य मानते थे। राजस्थान, हरियाणा, पंजाब और स्वयं उत्तर-प्रदेश में वह इस यथार्थ का अनुभव कर सके थे।

महाराष्ट्र के किसान-नेता श्री शरद जोशी गेहूं की समुचित कीमत दिलाने के लिए पंजाब के किसानों को जिस समय आन्दोलन की राह पर ले जाने की तैयारी कर रहे थे, उस समय आपने उनसे कहा था। मान लो एक बार आन्दोलन करके तुम उनको उचित मूल्य दिला दोगे, लेकिन फिर क्या होगा? क्या आप उनको हर वर्ष आन्दोलन करने को कहेंगे? आपने कहा था कि इस प्रकार के आन्दोलन इस समस्या के हल नहीं हैं। इसका एकमात्र हल है, शासन पर किसान का अधिकार। इसके अभाव में, पांच दशकों से अधिक समय में भी गांवों का उचित विकास नहीं हुआ। इसका कारण है प्रदेशों तथा केन्द्र में ग्रामीण-हितों से अलगावित सरकारों का होना। ये सरकारें और उनके नेता, व्यक्ति, परिवार और दलहित की नीति से बाहर निकल कर नहीं आये। अतः उनसे हित पूरे हुए उद्योगपतियों के दलीय नेताओं के और दलीय नीति से जुड़े बुद्धिजीवियों के। यही स्थिति आज भी है। फलतः एक सशक्त संगठन ही स्वार्थ-लोलुप लोगों के गठबंधन को तोड़ सकता है। इसी विचार से मोरारजी के विरुद्ध आपने झण्डा खड़ा किया और बोट-क्लब पर ऐतिहासिक किसान-रैली कराके, संगठन की शक्ति का परिचय दिया था।

□□□